कछवां, मिर्जापुर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5.2

...र प्रगति के पथ पर
...सर

...टेट बैंक लि०

...त कार्यालय का दिनांक
...ाल रोड कैंण्ट वाराणसी
...ानान्तरण के अवसर पर
...शुभकामनाए

(26)

...द अनूप कुमार
...१३, भदोही (उ० प्र०)

...केवीकोल एवं मोदी बॉड) और
...पोलीथीन एवं बी. ए. एस. एफ इंडिया लि० के "डाईज" के
थोक एवं फुटकर विक्रेता

...बैंक लि०
...ुहूर्त पर हार्दिक शुभकामनाएँ

...ट्स प्रा. लि.

...ी-221401
...0091-5414-25347 पी.पी.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्टेट बैंक लि०

णसी स्थित कार्यालय

७ जुलाई ९५ को दि

केण्ट वाराणसी स्थित

में स्थानान्तरण के

सर पर हार्दि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

तैत्तिरीयोपनिषद्

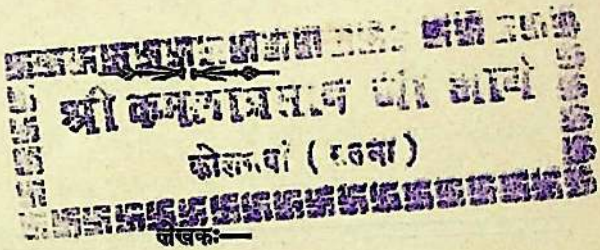

लेखकः—

महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज

प्रकाशकः—

सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा,
देहली।

प्रथम बार १००० | १९३९ | मूल्य ।)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्रकः—

लाला सेवाराम चावला

चन्द्र प्रिण्टिङ्ग प्रेस, नया बाज़ार,
देहली।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा, जो दक्षिण में कृष्ण यजुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध हैं, उसके एक आरण्यक का नाम, तैत्तिरीय आरण्यक है, उस आरण्यक में १० प्रपाठक हैं, जिनमें से प्रारम्भ के ६ प्रपाठकों में कर्मकाण्ड का वर्णन है। आगे के ३ प्रपाठक तैत्तिरीयोपनिषद् कहलाते हैं। १० वां प्रपाठक महानारायणोपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है। इस (तैत्तिरीय) उपनिषद् में ३ वल्ली हैं जिनके नाम प्रपाठकों के अंक सहित इस प्रकार हैं:—

१	शिक्षावल्ली ...	आरण्यक का	७ वाँ प्रपाठक
२	ब्रह्मानन्दवल्ली ...	,,	८ वां ,,
३	भृगुवल्ली ...	,,	९ वां ,,

पहली वल्ली में जिन शिक्षाओं का जिज्ञासु के लिये जानना आवश्यक है, उनका विवरण दिया गया है, दूसरी और तीसरा वल्ली उपनिषद् की शिक्षा का मुख्य अंग हैं और उनमें महत्वपूर्ण ब्रह्म विद्या सम्बन्धी शिक्षायें दी गई हैं। कुछ अन्य आवश्यक ज्ञातव्य बातों का भी उल्लेख जगह जगह पर हुआ है, जिनके जानने से मनुष्य जीवन उच्च बन सकता है।

(२) इससे पूर्व ६ उपनिषद् की टीकायें जनता के सम्मुख आ चुकी हैं। मुझे कृतज्ञता के भावों के साथ कहना चाहिये कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका प्रेमी जनता ने मेरी आशा से अधिक मान किया है। अब ये सातवीं उपनिषद् की टीका विज्ञ पाठकों के भेंट है। इस बात का पूरा यत्न किया गया है कि प्रत्येक विषय आसानी के साथ पाठकों के समझ में आ जावे।

नारायण आश्रम,
रामगढ़,
नैनीताल।
श्रावण कृष्ण ५
संवत् १९९२ वि०

नारायण स्वामी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

तैत्तिरीयोपनिषद्

प्रथमावल्ली शिक्षाध्यायः

प्रथमोनुवाकः

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥ नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतुवक्तारम्॥ १॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः। सत्यं वदिष्यामि पञ्च च।

इतिप्रथमोनुवाकः।

अर्थ—(मित्रः, न, शम्) मित्र हमारे लिये कल्याणकारी हो, (वरुणः शम्) वरुण=श्रेष्ठ (ईश्वर) सुखदायी हो, (अर्यमा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायकारी (ईश्वर) (नः, शम्, भवतु) हमारे लिये सुख कारक हो, (इन्द्रः) ऐश्वर्य्यवान (बृहस्पतिः) वेद वाणी का अधिपति (ईश्वर) (नः, शम्) हमारे लिये सुखकर हों, (उरुक्रमः) महापराक्रमी (विष्णुः) व्यापक (ईश्वर) (नः, शम्) हमारे लिये सुखदायक हों।

(नमो ब्रह्मणे) ब्रह्म को नमस्कार हो, (नमस्ते, वायो) हे सर्वाधार (ईश्वर) आपको नमस्कार हो, (त्वं, एव) आप ही (प्रत्यक्षं, ब्रह्म) प्रत्यक्ष ब्रह्म (असि) हैं, (त्वाम्, एव) आप ही को (प्रत्यक्षं, ब्रह्म) प्रत्यक्ष ब्रह्म (वदिष्यामि) कहूँगा (ऋतं वदिष्यामि) दिव्य सत्य कहूँगा (सत्यं, वदिष्यामि) सत्य कहूँगा (तत्, माम्, अवतु) वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करे (तत्, वक्तारम्, अवतु) वह, वक्ता=उपदेष्टा (आचार्य्य) की रक्षा करे, (अवतु, माम्) रक्षा करे मेरी और (अवतु, वक्तारम्) रक्षा करे उपदेष्टा (आचार्य्य) की।

व्याख्या—उपनिषद् का यह प्रारम्भिक अनुवाक, मंगलाचरण के तौर पर प्रयुक्त हो गया है। इसमें ईश्वर को अनेक गुणवाचक नामों से सम्बोधन करते हुए विद्यार्थी अपनी तथा अपने गुरु की रक्षा की प्रार्थना करता है।

इस प्रकार के गुणवाचक नाम ईश्वर के वेदों में अनेक जगह आते हैं:—

स धाता स विधाता स वायुर्नभ उच्छितम् ॥अ० १३।४।३॥
सोऽर्य्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ॥ ,, १३।४।४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1633

सो अग्निः स सूर्यः स रुद्र एव महायमः ॥ ,, १३।४।५॥

अर्थात् वह [ईश्वर] धाता है, विधाता है, वही वायु, वही उत्कृष्ट मेघ है॥ ३ ॥ वही अर्य्यमा, वही वरुण, रुद्र और महादेव है॥ ४ ॥ वही अग्नि, सूर्य और महायम है॥ ५ ॥ इत्यादि।

२ शांतिः शब्द के अर्थ हैं, भीतर समता और सुख का होना, तीन प्रकार के (आध्यात्मिकी, आधिदैविक और आधिभौतिक) दुख हैं, जिनसे मनुष्य के हृदय में समता और सुख न रह कर उसकी जगह विषमता और दुख आजाया करता है, इसीलिये शान्तिः का तीन बार यहाँ पाठ किया गया तथा अन्य स्थानों पर भी किया जाता है।

३ सत्यं वदिष्यामि पञ्च च। इस प्रकार के वाक्य उपनिषद्वाक्यों की रक्षार्थ और यह कि उनमें कोई न्यूनाधिक न कर सके, प्रयुक्त हुआ करते हैं। इस वाक्य में कहा गया है कि उपर्युक्त उपनिषद् में, सत्यं वदिष्यामि के बाद पांच वाक्य और हैं। गिनती करने से यह बात ठीक मालूम हो जाती है।

इति प्रथमोनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोनुवाकः

ओ३म् शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्ण स्वरः। मात्रा बलम्। साम सन्तानः। इत्युक्तः शीक्षाध्यायः॥ १ ॥ शीक्षां पञ्च ॥

इतिद्वितीयोनुवाकः॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ—(शीक्षां, व्याख्यास्यामः) अब शिक्षा की व्याख्या करेंगे।

(वर्णः) अकारादि अक्षर (स्वरः) उदात्त, अनुदात्तादि स्वर (मात्राः) ह्रस्वादि मात्रायें (बलम्) आभ्यन्तर और बाह्य-प्रयत्न (साम) मधुरता से शब्दों का उच्चारण (सन्तानः) सन्धि= अक्षरों का मेल। (इति) इस प्रकार (शिक्षाध्यायः) शिक्षा-अध्याय (उक्तः) कहा गया ॥ १ ॥ (शीक्षां पञ्चः) शिक्षा और उसके बाद ५ वाक्य और इस उपनिषद्वाक्य में हैं ॥ २ ॥

व्याख्या—उपनिषद् की शिक्षा समझने के लिये आवश्यक था कि जिज्ञासु को शब्द शिक्षा का भान हो, इसीलिये यहाँ पहले शब्द शिक्षा के अङ्ग वर्ण, स्वरादि का उल्लेख किया गया है।

इति द्वितीयोनुवाकः ॥

अथ तृतीयोनुवाकः

सह नौ यशः सह नौ ब्रह्मवर्चसम्। अथातः संहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः। पञ्चस्वधिकरणेषु। अधिलोकमधिज्यौतिषमधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मम्। ता महासंहिता इत्याचक्षते ॥ ३

अर्थ—(सह, नौ, यशः) साथ साथ हम दोनों (गुरु और शिष्य) का यश हो (और) साथ साथ हम दोनों का तेज हो।

(अथ, अतः) अब इसके बाद (संहिताया, उपनिषदं,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्यास्यामः) संहिता की उपनिषद् का व्याख्यान करेंगे। (पञ्चस्वधिकरणेषु) पांच अधिकरणों (मदों या भागों) में (वह उपनिषद् है)। (अधिलोकम्) लोक के सम्बन्ध में, (अधिज्यौतिषम्) ज्योतिष (नक्षत्रों) के सम्बन्ध में, (अधिविद्यम्) विद्या के सम्बन्ध में, (अधिप्रजम्) सन्तान के सम्बन्ध में, (अध्यात्मम्) शरीर के सम्बन्ध में। (ता) इन (पांचों) को (महासंहिता) महासंहिता (इति, आचक्षते) ऐसा कहते हैं।

व्याख्या—संहिता मिले या संयुक्त वस्तु को कहते हैं—यहां जिन पांच संयुक्त वस्तुओं के नाम लिये गये हैं उन्हीं को संहिता कहा गया है। उपनिषद् के अर्थ हैं समीप बैठना गुरु के समीप बैठने से जो ज्ञान प्राप्त होता है उसको यहां उपनिषद् कहा गया है। संहिता की उपनिषद् का भाव इसलिये यह हुआ कि पांच संयुक्त अवयवों (अधिलोक, आदि) का ज्ञान। इनकी व्याख्या आगे की गई है॥

अथाधिलोकम्– पृथिवी पूर्वरूपम्। द्यौरुत्तररूपम्। आकाशः सन्धिः ॥१॥

वायुः सन्धानम्। इत्यधिलोकम्। अथाधिज्यौतिषम्– अग्निः पूर्वरूपम्। आदित्य उत्तर रूपम्। आपः सन्धिः। वैद्युतः सन्धानम्। इत्यधिज्यौतिषम्। अथाधिविद्यम् आचार्यः पूर्वरूपम् ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तेवास्युत्तररूपम् । विद्या सन्धिः प्रवचन ँ सन्धानम् इत्यधिविद्यम् । अथाधिप्रजम्-मातापूर्वरूपम् । पितोत्तररूपम् । प्रजासन्धिः । प्रजनन ँ सन्धानम् । इत्यधिप्रजम् ॥३॥

अथाध्यात्मम् अधरा हनुः पूर्वरूपम् । उत्तरा हनुरुत्तररूपम् । वाक्सन्धिः । जिह्वा सन्धानम् । इत्यध्यात्मम् । इतीमा महा सँहिताः । यएवमेता महासँहिता व्याख्याता वेद । सन्धीयते प्रजया पशुभिः ब्रह्मवर्चसेनाद्येन सुवर्गेणलोकेन ॥४॥

सन्धिराचार्यः पूर्वरूपमित्यधिप्रजः लोकेन ।
सन्धिराचार्य्यः पूर्वरूप मित्यधि मंत्रलोकेन ॥५॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अर्थ—(१) (अथ, अधि लोकम्) अब लोक के सम्बन्ध में (कहते हैं) (पृथिवी, पूर्व रूपम्) पृथिवी पूर्व रूप, (द्यौ, उत्तर,-रूपम्) द्यौ उत्तर रूप, (आकाशः सन्धिः) आकाश सन्धि(मेल) और (वायु सन्धानम्) वायु सन्धान (मिलाने वाला) है । (इति, अधि, लोकम्) यह लोक के सम्बन्ध में हुआ ।

(२) (अथ, अधिज्यौतिषम्) अब नक्षत्रों के सम्बन्ध में (कहते हैं) (अग्निः पूर्वरूपम्) अग्नि पूर्वरूप, (आदित्य उत्तररूपम्) सूर्य्य उत्तर रूप, (आपः सन्धिः) जल सन्धि और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वैद्युतः सन्धानम्) बिजली मेल कराने वाली है। (इत्यधिज्यौतिषम्) यह ज्योतिष के सम्बन्ध में हुआ।

(३) (अथ, अधि, विद्यम्) अब विद्या के सम्बन्ध में कहते हैं। (आचार्यः, पूर्वरूपम्) गुरु पूर्वरूप, (अन्ते वासि, उत्तररूपम्) शिष्य उत्तर रूप है। विद्या, सन्धिः, विद्या सन्धि है और प्रवचनम्, सन्धानम् प्रवचन=पढ़ाना मिलाने वाला है। (इति अधि विद्यम्) यह विद्या के सम्बन्ध में हुआ।

(४) (अथ, अधि, प्रजम्) अब सन्तान के सम्बन्ध में कहते हैं। (माता, पूर्वरूपम्) माता पूर्वरूप, (पितोत्तर रूपम्) पिता उत्तर रूप, (प्रजा, सन्धिः) सन्तान उनकी सन्धि मेल और (प्रजननम् सन्धानम्) उत्पादन कर्म उनका मेल कराने वाला है। (इत्यधि प्रजम्) यह सन्तान के सम्बन्ध में हुआ।

(५) (अथ अध्यात्मम्) अब शरीर के सम्बन्ध में कहते हैं, (अधरा, हनुः, पूर्वरूपम्) मुख का निचला भाग ओष्ठ जबड़ा ठोढी आदि पूर्व रूप (उत्तरा हनुः उत्तर रूपम्) ऊपर का जबड़ा ओष्ट आदि उत्तर रूप, (वाक्, सन्धिः) वाणी सन्धि, और (जिह्वा सन्धानम्) और जिह्वा मिलाने वाली है।) इति, अध्यात्मम्) यह शरीर के सम्बन्ध में हुआ।

(इति, इमा, महा संहिताः व्याख्याता वेद) जो इस प्रकार इन व्याख्यायित् महा संहिताओं को जानता है, वह (प्रजया) सन्तान से, (पशुभिः) पशुओं से। (ब्रह्मवर्चसेन) तेजास्विता से (अन्नाद्येन) खाद्यपदार्थों से (सुवर्गेण, लोकेन) और स्वर्ग लोक से (सन्धीयते) मिलता है अर्थात् इन को प्राप्त कर लेता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्या—आचार्य्य ने प्रारम्भ में वर्ण स्वरादि की शिक्षा देने के बाद, शिष्य को संहिता, का ज्ञान देना चाहा—संहिता मेल को कहते हैं। जगत स्वयं भी, और उसमें उपस्थित सभी पदार्थ प्रकृति के अणुओं के मेल का परिणाम है कहीं कहीं जीव का भी सम्मेलन है इसलिये यह जगत स्वयं संहिता रूप है। इस संहिता रूपी जगत का ज्ञान उस के पांच विभागों के जान लेने से हुआ करता है, जिनका विवरण इस प्रकार है:—

संख्या,	नाम विभाग,	पूर्वरूप,	उत्तररूप,	सन्धि,	सन्धानम्,
[१]	लोक	पृथ्वी	द्यौ	आकाश	वायु
[२]	ज्योतिष	अग्नि	सूर्य्य	जल	बिजली
[३]	विद्या	आचार्य्य	शिष्य	विद्या	प्रवचन
[४]	प्रजा	माता	पिता	सन्तान	प्रजनन
[५]	अध्यात्म	अधरा हनु	उत्तरा हनु	वाक्	जिह्वा

आचार्य्य ने, कितना उत्तम शिक्षा देने का क्रम, इन विभागों के द्वारा बतलाया है। सब से पहिले उस ने जगत का, समष्टि रूप से, ज्ञान, शिष्य को दिया, जिसका उल्लेख, पहले विभाग में है।

(१) समष्टि रूप से जगत् दो विभागों में विभक्त है। एक ऐसे नक्षत्र हैं जो स्वयं प्रकाशमय नहीं हैं किंतु अन्यों से प्रकाश ग्रहण किया करते हैं। ऐसे समस्त नक्षत्रों का एक नाम पृथ्वी है। दूसरे ऐसे हैं जो स्वयं प्रकाशक हैं, इन सब का एक समष्टि नाम द्यौ है। इन दोनों प्रकार के नक्षत्रों का ज्ञान होने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से जगत का ज्ञान समष्टिरूप से हो जाया करता है। इन दोनों प्रकारके नक्षत्रोंके मध्य में आकाश* हुआ करता है और इसलिये वही इनके मेल का कारण होता है और इसीलिये उसे सन्धि कहा गया है। इन नक्षत्रों का ज्ञान रोशनी से हुआ करता है और रोशनी (प्रकाश) का मार्ग वायु है इसीलिये वायु को मेल कराने वाला कहा गया है।

(२) अब समष्टिरूप से जगत् का ज्ञान प्राप्त करने के बाद असंख्य सूर्य मंडलों में से अपने सूर्य मंडल की ओर चलना चाहिये। इस मंडल वाले विभाग का नाम ज्योतिष है। सूर्य्यादि समस्त प्रकाशक नक्षत्रों से संबंधित विद्या का नाम ज्योतिष है। पञ्चभूतों में से प्रकाश देने वाले भूत का नाम अग्नि है। प्रकाश का आदि कारण उसी के होने से यहां उसे पूर्व रूप कहा गया है। उसी अग्नि के प्रकाश से सूर्य्य प्रकाशित है। इसलिये उसे उत्तररूप कहा गया है। प्रत्येक सूर्य्यमंडल में सब से अधिक मुख्यता सूर्य्य ही की हुआ करती है, इसलिये अपने सूर्य्य का प्रथम ज्ञान दे देना इस विभाग का मुख्योद्देश्य है। सूर्य्य के साथ ही उस के ग्रहों और उपग्रहों का ज्ञान भी

---

*यजुर्वेद पुरुष सूक्त में भी द्यौ (शिर) और पृथिवी (पांव) के मेल का कारण अन्तरिक्ष रूपी उदर ही बतलाया गया है। आकाश, शब्द, अन्तरिक्ष (Space) और ईथर (Ether) दोनों के लिये दर्शनों में प्रयुक्त होता है। प्रकरण को देख कर उस के अर्थ अन्तरिक्ष या ईथर किये जाया करते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौण रीति से विद्यार्थी को हो जाया ही करता है, इसलिये स्पष्ट शब्दों में उसका उल्लेख इस विभाग में नहीं किया गया। संसार में यह अनुभव सिद्धबात है कि वस्तुओं का मेल जल से हुआ करता है सूर्य्य का पिंड भी जल ही से पिंडित हुआ करता है। इसी जल से विद्युत् भी व्यक्त हुआ करती है। अवश्य अव्यक्त विद्युत् (अग्निरूप मन का विकार) जल के व्यक्त होने का कारण होती है, इसीलिये उस को सन्धान कहा गया है।

(३) समष्टि रूप से जगत और व्यष्टि रूप से सूर्य मंडल का विवरण देने के बाद यह बतलाया गया है कि ये सभी ज्ञान विद्याध्ययन से प्राप्त हुआ करता है—इसलिये तीसरे विभाग का नाम अधिविद्यम् रक्खा गया है। विद्या आचार्य्य द्वारा प्राप्त हुआ करती है, इसलिये इस विभाग में आचार्य्य को पूर्व रूप और शिष्य को उत्तर रूप कहा गया है। इन गुरु शिष्य के मेल का कारण विद्या है, इसलिये उसको सन्धि और विद्या देने के कार्य्य (प्रवचन) को सन्धान कहा गया है।

(४) विद्यार्थी को इन उपर्युक्त तीनों विभागों का ज्ञान प्राप्त करने के बाद गृहस्थ के विचार और आचार जानने चाहिये और समावर्तन के बाद गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट भी होना चाहिये। यही आश्रम चौथे विभाग का विषय है। यह आश्रम मुख्य रीति से, पितृऋण से सन्तानोत्पति द्वारा उऋण होने के लिये है, इसी लिये इस विभाग में पूर्व रूप माता, उत्तर रूप पिता, सन्धि सन्तान और प्रजनन क्रिया को सन्धान कहा गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) इस प्रकार नियम पूर्वक ब्रह्मचर्य्य तथा गृहस्थ धर्म का पालन करते हुये, मनुष्य को अपने जानने का यत्न करना चाहिये तभी वह उपनिषदों (आत्मतत्त्व) की शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो सकता है, और तभी वह आगे के आश्रमों में जाने के योग्य भी हो सकता है, अपने जानने का जब मनुष्य प्रयत्न करता है तब उसे सब से पहले अपने शरीर के अन्तः और वाह्य कारणों के जानने की चेष्टा करनी पड़ती है। इसी ज्ञान प्राप्ति का नाम अध्यात्म विद्या है। अध्यात्म विद्या का केन्द्र शिर होता है—क्योंकि वही समस्त ज्ञानेन्द्रियों का आश्रय स्थान है और वही अन्तःकरणों का केन्द्र भी है।* शिर के दो भाग करके एक को उपनिषद्कार ने अधराहनु और दूसरे को उत्तराहनु कहा है। समस्त ज्ञान जो आत्मा से बाहर का है वह वाणी द्वारा ही प्राप्त हुआ करता है इसलिये यहां वाणी (वाक्) को सन्धि कहा गया है और जिह्वा को सन्धान क्योंकि वाणी जिह्वा द्वारा ही व्यापार में आया करती है।

अनुवाकान्त में, फलश्रुति कहते हुये उपनिषद् में कहा गया है कि जो मनुष्य इन महान संहिताओं को जानता और उनके अनुकूल आचरण करता है उसे संतान, पशु, तेजस्विता और

---

*मन और चित्त का स्थान यद्यपि वक्ष के निचले भाग के निकट और पेट के ऊपर है तथापि उन के गोलक जिनके द्वारा वे काम करते हैं, पहले और दूसरे मस्तिष्क (Cerebrum and Cerebellum) ही है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्न प्राप्त होते हैं और अन्त में स्वर्गलोक की प्राप्ति भी होती है।

इतितृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः

यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः। छन्दोभ्योऽध्यमृतात्सं-बभूव। स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु। अमृतस्य देवधारणो भूयासम्। शरीरं मे विचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा। कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्। ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः। श्रुतं मे गोपाय। आवहन्ती वितन्वाना ॥१॥ कुर्वाणाचीर-मात्मनः। वासांसि मम गावश्च। अन्नपाने च सर्वदा। ततो मे श्रियमावह। लोमशां पशुभिःसह स्वाहा। आमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। विमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। प्रमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। दमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥२॥ यशोजने ऽसानि स्वाहा। श्रेयान् वस्यसोऽसानि स्वाहा। तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा। स मा भग प्रविश स्वाहा। तस्मिन् सहस्रशाखे। निभगाहं त्वयि मृजे स्वाहा। यथापः अवता यन्ति। यथा मासा अहर्जरम्। एवं मां ब्रह्मचारिणः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धातरायन्तु सर्वतः स्वाहा । प्रतिवेशोऽसि प्रमापाहि प्रमा-
पद्यस्व ॥३॥ वितन्वाना शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ।
धातरायन्तु सर्वतः स्वाहैके च ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अर्थ—(यत्) जो (छन्दसाम्) वेदों में (ऋषभः) श्रेष्ठ कहा गया है और जो (विश्वरूपः) प्रत्येक वस्तु में तद्रूप से (अवस्थित) और (छन्दोभ्य, अमृतात्) वेदों और मोक्ष से भी (अधिसंबभूव) ऊपर प्रकट है, (सः इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान ईश्वर (माम्) मुझको (मेधया) मेधावी बुद्धि से (स्पृणोतु) बलवान करे। (अमृतस्य) अमरता का (देव, धारणः) विद्वानों के तुल्य धारण करनेवाला (भूयासम्) होऊँ। (मे शरीरम्, विचर्षणम्) मेरा शरीर बलवान हो। (मे, जिह्वा मधुमत्तमा) मेरी जिह्वा में मधुरता हो। (कर्णाभ्यां, भूरि, विश्रुवम्) कानों से बहुत सुनूँ (ब्रह्मणः) (हे इन्द्र) तू ज्ञान का (कोशः, असि) भंडार है। (मेधया) मेधावीबुद्धि से (पिहितः) ढका हुआ है। (मे, श्रुतम्, गोपाय) मेरे सुने हुये की रक्षा कर (तेरी कृपा, मेरी कीर्त्ति को) आवहन्ती धारण करती, (वितन्वाना) फैलाती ॥ १॥ और (आत्मनः) अपने इष्ट की सिद्ध करती हुई (अचीरम्) शीघ्र (कुर्वाणा) मेरी रक्षा करे। (मम, वासांसि) मेरे (पास) वस्त्र (गावः, च) और गाय आदि पशु (अन्न, पाने, च, सर्वदा) अन्न और पीने योग्य पदार्थ सदैव हों। (ततः) इसके बाद (श्रियम्) श्री=लक्ष्मी (मे, आवह) मुझे दे। (लोमशां) बालोंवाले (भेड़,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकरी आदि) (पशुभिः, सह, स्वाहा) अन्य पशुओं के साथ मुझे प्राप्त हो। (मा) मेरे समीप (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी (आ, यान्तु) आवें। (मा) मुझको (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी (वि, यन्तु) विशेष रीती से प्राप्त हों (मा) मुझ को (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी (प्र, यन्तु) अच्छे प्रकार जानें (दमाः, ब्रह्मचारिणः) इन्द्रियों को वश में रखने वाले ब्रह्मचारी (यन्तु) प्राप्त हों (शमाः, ब्रह्मचारिणः) अन्तःकरणों को शान्त रखने वाले ब्रह्मचारी (यन्तु) प्राप्त हों ॥ २ ॥ (यशोजने) यशस्वी मनुष्यों में (असानि) होऊं। (वस्यसः) धनी पुरुषों में (श्रेयान्, असानि) श्रेष्ठ होऊँ। (भग) हे भगवान् ! (तम, त्वा) उस तुझ में (प्रविशानि) प्रविष्ट होऊं (भग) हे ऐश्वर्यवान ईश्वर ! (सः, मा, प्रविश) वह मुझमें प्रविष्ट हो। (सहस्रशाखे) हजारों जगतरूप शाखायें हैं जिसमें (तस्मिन्, त्वयि) उस तुझ में (भग) हे ईश्वर ! (अहम्) मैं (नि, मृजे) (अपने को) शुद्ध करता हूँ। (यथा) जैसे (आपः) जल (प्रवता) नीचाई की ओर (यन्ति) चलते और (यथा) जैसे (मासा) महीने (अतर्जरम्) वर्ष में जा मिलते हैं (एवम्) इसी प्रकार (धातः) हे सबके धारण करनेवाले ईश्वर ! (सर्वतः) सब ओर से (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी (माम्) मेरे पास (आ, यन्तु) आवें। हे ईश्वर आप ! (प्रति वेशः, असि) विश्राम के स्थान हैं अर्थात् जहां जाने से सब को आराम मिलता है (मा) मुझको (प्र, भाहि) (जगत् में) चमकाइये और (मा) मुझ को (प्र, यास्व) अपनी शरण में लेवें ॥ ३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोट—"वितन्वाना", "शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा", "धातरायन्तु सर्वतः स्वाहा"। ये तीन वाक्य प्रत्येक खंड के अन्त के शब्द हैं, इन्हें लिख कर कहा गया है कि इस के बाद एक वाक्य और है। यह और इस प्रकार के लेख जो उपनिषद् के प्रत्येक अनुवाक के अन्त में लिखे गये हैं केवल उपनिषद् वाक्य संख्या की रक्षार्थ हैं।

व्याख्या—पंच महासंहिताओं का ज्ञान प्राप्त करने के बाद, क्रियात्मक जीवन कैसा होना चाहिये और उस के लिये क्या क्या सामग्री अपेक्षित हैं? इस का विवरण, इस अनुवाक में दिया गया है।

(१) लोक और परलोक दोनों प्रकार की उन्नति प्राप्त करने का उद्देश्य, अमर्ता का जीवन प्राप्त करना हो सकता है, इसी लिये उस की शिक्षा प्रारम्भ ही में दी गई है।

(२) व्यक्तिगत जीवन के उच्च बनाने के लिये निम्नबातें इस अनुवाक में वर्णित हैं—

मेधावी बुद्धि, शारीरिकबल, वाणी में मधुर्ता, बहुश्रुत होना और कीर्ति प्राप्त करना।

(३) गृहस्थ अथवा समाजगत जीवन को उत्तम बनाने की सामग्री ये हैं—

अच्छे वस्त्रों, पशुओं (गाय, बैल, भेड़, बकरी आदि) प्रत्येक प्रकार के खाद्य अन्नों, सब तरह के पीने योग्य पदार्थों का होना तथा धनलक्ष्मी से भर पूर होना।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) ऐसे सद् गृहस्थ की सदैव इच्छा यह रहनी चाहिये कि उसे ब्रह्मचारी जानें और अच्छे, इन्द्रियों पर अधिकार रखने वाले शील युक्त ब्रह्मचारी, उस के पास, भिक्षा प्राप्ति के लिये आवें और विशेष रीति से आवें तभी वह यशस्वी हो सकता है।

(५) उस के भीतर आस्तिक बुद्धि और ईश्वर प्रायणता होनी चाहिये जिस से उस की आत्मा को भी शुद्धि हो।

(६) उपर्युक्त व्यक्ति इस योग्य हुआ करता है कि वह जगत् में चमके, उसकी कीर्ति का विस्तार हो और वह प्रभु की शरण में आने का अधिकारी बने।

(७) इस अनुवाक में "लोमशां" से प्रारम्भ होने वाले वाक्य से लेकर "सर्वतः" शब्द के साथ समाप्त होने वाले वाक्य पर्यंत, प्रत्येक वाक्य के अन्त में स्वाहा शब्द आया है। यह बड़े महत्त्व की बात है। "स्वाहा" शब्द के अर्थ स्वार्थ त्यागने के हैं। गृहस्थ विद्वान् चाहे धन संग्रह करे चाहे ब्रह्मचारियों को भिक्षा अथवा शिक्षा देवे, उस के ये समस्त काम, निष्काम होने चाहिये। स्वार्थ प्रायणता का उन में लेशमात्र भी दखल नहीं होना चाहिये, तभी वह सब के साथ न्याय का व्यवहार कर सकता है।

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अथ पंचमोनुवाकः

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः। तासामुह स्मैतां चतुर्थीम्। माहाचमस्यः प्रवेदयते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मह इति तद्ब्रह्म । स आत्मा । अङ्गान्यन्या देवताः । भूरिति वा अयं लोकः भुव इत्यन्तरिक्षम् । सुवरित्यसौ लोकः ॥ १ ॥ मह इत्यादित्यः । आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते । भूरिति वा अग्निः । भुव इति वायुः । सुवरित्यादित्यः । मह इति चन्द्रमाः । चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतींषि महीयन्ते । भूरितिवा ऋचः । भुव इति सामानि । सुवरिति यजूंषि ॥२॥ मह इति ब्रह्म । ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते । भूरिति वै प्राणः । भुव इत्यपानः । सुवरिति व्यानः । मह इत्यन्नम् । अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते । ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्धा । चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः । ता यो वेद । स वेद ब्रह्म । सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति ॥३॥ (असौ लोको यजूंष्यपि वेद द्वेच) ।६॥

इतिपञ्चमोनुवाकः ॥

अर्थ—(भूः, भुवः, सुवः, इति, वै, तिस्रः, व्याहृतयः) भूः भुवः, स्वहः, ये तीन व्याहृतियां हैं । (तासाम्) उन में (उ, ह, स्म) बीते हुये काल में (एताम्, मह, इति) इस "मह" (चतुर्थीम्) चौथी व्याहृति को (माहाचमस्यः) महाचमस नामक ऋषि का पुत्र माहाचमस्य (प्रवेदयते) अच्छे प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानता था। (तद्, ब्रह्म) वह (महः) ब्रह्म है (सआत्मा) वह आत्मा है। (अन्याः, देवता) अन्य (सूर्य्यादि) देवता (अङ्गानि) (ब्रह्म के उत्पन्न किये हुये जगत के) अङ्ग हैं। (अयम्, लोकः, वै, भूः इति) यह (पृथ्वी) लोक भूः है (अन्तरिक्षम्, भुव, इति) अन्तरिक्ष "भुवः" है (असौ, लोकः, सुवः, इति) वह (द्यौ) लोक स्वः है ॥१॥ (आदित्यः, महः इति) सूर्य्य "मह है। (आदित्येन वाव) सूर्य्य ही से (सर्वे, लोकाः) समस्त लोक (महीयन्ते) बढ़ते हैं। (अग्निः, वै, भूः इति) अग्नि भूः है। (वायुः, भुवः, इति) वायु भुवः है। (आदित्यः, सुवः, इति) सूर्य स्व है। (चन्द्रमा, मह, इति) चन्द्रमा मह है। (चन्द्रमसा, वाव) चन्द्रमा ही से (सर्वाणि, ज्योतींषि) समस्त ज्योतिर्ये (महीयन्ते) महिमा (शीतलता) प्राप्त करती हैं। (ऋचः, वै, भूः, इति) ऋचायें भूः हैं। (सामानि भुवः, इति) साम भुवः हैं। (यजूंषि, सुवः, इति) यजु स्वः हैं ॥२॥

(ब्रह्म, महः, इति) ब्रह्म महः है। (ब्रह्मणा, वाव, सर्वे, वेदा महीयन्ते) ब्रह्म ही से समस्त वेद महत्ता प्राप्त करते हैं। (प्राणः, वै, भूः, इति) प्राण भूः हैं। (अपानः, भुवः, इति) अपान, भूवः, है। (व्यानः, सुवः, इति) व्यान स्वः है। (अन्नम्, महः, इति) अन्न महः है। (अन्नेन- वाव) अन्न ही से (सर्वे प्राणा महीयन्ते) समस्त प्राण महिमा वाले हैं। (ताः, वै, एताः, चतस्रः) ये ही ये चार (व्याहृतियां) (चतुर्धा) चार प्रकार की हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(व्याहृतयः, चतस्रः चतस्रः) (अर्थात् एक एक) व्याहृति चार चार प्रकार की हैं। (यः, ताः, वेद) जो इन्हें जानता है (सः ब्रह्म, वेद) वह ब्रह्म को जानता है। (अस्मै) इस (व्याहृतियों के भ्राता) को (सर्वे, देवाः) सब विद्वान् (बलिम्) बलि (भेन्ट) (आवहन्ति) लाते हैं ॥३॥ इस अनुवाक में, दो खंडों के अन्तिम शब्द "असौलोको" और "यजूंषि" हैं और तीसरे खंड में, उस वाक्य के बाद, जिस के अंत में "वेद" है। दो वाक्य और हैं।

व्याख्या—इस अनुवाक में व्याहृतियों की महत्ता प्रकट की गई है। वेद में एक जगह ईश्वर को "वाचि व्याहृतायाम्" कहा गया है।

(१) इन प्रारम्भिक तीन व्याहृतियों के द्वारा ईश्वर का स्वरूप प्रकट किया गया है "भू सत्तायाम् धातु से भूः के अर्थ हैं सत्, "भुव, अवचिन्तने धातु से, भुवः के अर्थ चित् के हैं। स्वः आनन्द को कहते हैं। इस प्रकार भूः भुवः स्वः के अर्थ सच्चिदानन्द हुए। यही ईश्वर का स्वरूप है महः उस सच्चिदानंद स्वरूप वाले ईश्वर की महत्ता का द्योतक है। माहाचमस्य नामक विद्वान् इसी बात का ज्ञान रखता और प्रचार करता था।

(२) एकेश्वरवाद को उत्तम रीति से पुष्टि करने ही के लिये उपनिषद् के, इस वाक्य में कहा गया है कि महः अर्थात् महान तम उपास्य तो ईश्वर ही है। अन्य सूर्य्यादि देवता उस महान

१ देखो यजुर्वेद ८। ५। ४

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर के रचे जगत् के अंगोपांग ही है।

(३) अब व्याहृतियों की व्यापकता दिखलाते हुये प्रत्येक व्याहृति के चार चार भेद प्रकट किये गये हैं :—

(१) भूः = पृथिवी, अग्नि, ऋचा, प्राण
(२) भुवः = अन्तरिक्ष, वायु, साम, अपान
(३) स्वः = द्युलोक, आदित्य, यजु, व्यान
(४) महः = आदित्य, चन्द्रमा, ब्रह्म, अन्न

इन चारों वेद के ३ विभाग किये जाते हैं। पहले विभाग में ईश्वर की व्यापकता समस्त भूतों और समस्त लोकों में दिखलाई गई है। इस के लिये व्याहृतियों के प्रथम दो भेद इस (पहले) विभाग के अंग हैं। दूसरे विभाग में ईश्वर की व्यापकता, ज्ञान रूप से, वेदों में प्रकट की गई है।

नोट—यहां एक बात याद रखनी चाहिये कि चारों वेदों में तीन ही प्रकार के मंत्र होते हैं, जिन में से पाद व्यवस्था वाले ऋक्, गायन किये जाने वाले साम और बाकी को यजु कहा जाता है—इन तीन प्रकार के मंत्रों के प्रकट कर देने से उन में चारों वेदों का समावेश हो जाता है। इस के सिवा अथर्व वेद का नाम ब्रह्म वेद भी है इसलिये यदि कोई चाहे तो ब्रह्म शब्द के अथर्व वेद भी अर्थ कर सकता है।

तीसरे विभाग में ईश्वर की व्यापकता, प्राणियों के शरीरों में प्राण के रूपमें दिखलाई गई है। भाव इन सब का यह है कि यह व्याहृति आख्यान, ईश्वर के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने के उद्देश्य से किया गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) एक बात और भी, इन भेदों पर दृष्टि डालने से प्रकट होती है और वह यह है कि यतः, व्याहृति के चारों भेदों को मुख्यता दी गई है। इन भेदों में आदित्य, चन्द्रमा, ब्रह्म और अन्न का समावेश है। (१) आदित्य की विशेषता स्पष्ट है कि जगत् के सभी कार्य्य सूर्य्य के प्रकाश और गर्मी के द्वारा पूर्ण हुआ करते हैं। (२) चन्द्रमा प्रकार की दृष्टि से, यदि देखा जावे, तो उसका स्थान नक्षत्रों में सब से छोटा है परन्तु छोटा होते हुये भी, उस की विशेषता उस के शीतलता मय प्रकाश में है। (३) ब्रह्म की महत्ता तो स्पष्ट ही है (४) अन्न की महत्ता प्राणियों के लिये कितनी है यह किसी से भी छिपी हुई बात नहीं है। प्राण होने से मनुष्य प्राणी कहा जाता है परन्तु उस प्राण का कारण अन्न ही होता है।

(५) अन्तिम बात फल श्रुति है। जो मनुष्य इन व्याहृतियों को जानता और जानने से, जो लाभ उठाना चाहिये वह लाभ उठाता है तो वह न केवल ब्रह्मज्ञानी होता है बल्कि सांसारिक व्यक्तियों में प्रतिष्ठा भी प्राप्त करता है और सभी लोग उसे भेंट और उपहार देकर सन्मानित किया करते हैं।

इति पञ्चमोनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः

स य एषोन्तर्हृदय आकाशः। तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः। अमृतो हिरण्मयः। अन्तरेण तालुके। य एषस्तन इवा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वलम्बते । सेन्द्रयोनिः । यत्रासौ केशान्ते विवर्तते । व्यपोह्य शीर्षकपाले । भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति । भुव इति वायौ ॥१॥ सुवरित्यादित्ये । मह इति ब्रह्मणि । आप्नोति स्वराज्यम् । आप्नोति मनसस्पतिम् । वाक्पतिश्चक्षुष्पतिः । श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः । एतत्ततो भवति । आकाशशरीरं ब्रह्म। सत्यात्म प्राणारामं मन आनन्दम् । शान्ति समृद्धममृतम् । इति प्राचीन योग्योपास्व॥२॥ वायावमृतमेकञ्च ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः॥

अर्थ—(अन्तर्हृदय) हृदय में (यः) जो (एषः) यह (आकाशः) आकाश है (तस्मिन्) उसमें (सः, अयम्, पुरुषः) वह यह पुरुष (जीवात्मा) (मनोमय) मनन शील, (हिरण्यमयः) ज्योतिर्मय (अमृतः) और अमर है। (तालुके, अन्तरेण) दोनों तालुओं के बीच (यः, एष) जो यह (स्तन, इव) (माँस का टुकड़ा) स्तन के समान (अवलम्बते) लटकता है। (सा, इन्द्र, योनिः) वह जीवात्मा का स्थान है। (यत्र) जहाँ (केश, अन्तः) बालों की जड़ (विवर्तते) अलग अलग होती हैं (वहां वह जीवात्मा) (शीर्ष, कपाले) शिर के कपालों को (व्यपोह्य) खोल कर (भूः, इति) भूः रूप (अग्नौ) अग्नि में (प्रति तिष्ठति) प्रतिष्ठित होता है। (भुवः, इति, वायौ) भुवः रूप वायु ॥ १ ॥ (सुवः, इति, आदित्ये) स्वः रूप आदित्य और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(महः, इति, ब्रह्मणि) महः रूप ब्रह्म में होकर (स्वराज्यम्, आप्नोति) स्वराज्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है। (मनस्पतिम्, आप्नोति) मन का स्वामी हो जाता है, (वाक्, पतिः, च) वाणी का स्वामी हो जाता है, (चक्षुः पतिः, श्रोत्रपतिः, विज्ञानपतिः) चक्षु, श्रोत्र, और विज्ञान (बुद्धि) का भी स्वामी हो जाता है। (एतत्, ततः, भवति) (तत्) यह (सच्चित् जीव) वह (सच्चिदानन्द) हो जाता है। (आकाश शरीरम्) आकाश (जिसका) शरीर है, (सत्य आत्मा) आत्मा (जिसका) सत्य है (प्राणारामम्) प्राण (रूप अपनी सत्ता) में जो रमण करता है (मन, आनन्दम्) आनन्द (ही जिसका) मन है (शान्ति, समृद्धम्) शान्ति जिस की सम्पत्ति है (अमृतम्) और जो अमर है (प्राचीन योग्य, इति, ब्रह्म, उपास्व) हे प्राचीन योग्य! ऐसे ब्रह्म की तू उपासना कर।

नोट—पहले खण्ड के अन्त में वायु है और दूसरे खण्ड में अमृतम् के बाद एक वाक्य और है।

इति षष्ठोऽनुवाकः॥

व्याख्या—व्याहृतियों की शिक्षा देने के बाद, इस अनुवाक में जीवात्मा के सम्बन्ध में कुछएक उपयोगी बातें बतलाई गई हैं:—

(१) सबसे पहली बात यह बतलाई गई है कि शरीर में जीवात्मा कहां रहता है? उसका निवास स्थान हृदयाकाश बतलाते हुए उसे मनन शील (मनीषी,) ज्योतिर्मय और अमर कहा गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) जब जीव शरीर छोड़कर मुक्तावस्था प्राप्त करने के लिये यात्रा करता है, तब वह दोनों तालुओं के बीच स्तन के समान लटकते हुए मांस के टुकड़े में आ जाता है। सुष्मणा नाड़ी जो शरीर के निचले भाग मूलाधार से प्रारम्भ होकर हृदय में होती हुई शिर तक चली गई है और शिर में उसका अन्तिम ऊपरी स्थान "ब्रह्म रन्ध्रचक्र" के नाम से प्रसिद्ध है और जिसके लिये कहा जाता है कि मुक्त होकर जीव उसी मार्ग से निकला करता है।[1] उसका मार्ग उन्हीं उपर्युक्त तालुओं के मध्य होकर है और वह लटकता मांस का टुकड़ा ठीक उसके मार्ग में है। जीव को मुक्ति में जाने के लिये ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचना है इसलिये उसे शरीर के अपने साधारण निवास स्थान हृदयाकाश को छोड़कर उपर्युक्त मांस के टुकड़े में आ जाना पड़ता है, इसीलिये उसे "इन्द्रयोनि" जीव का स्थान यहां कहा गया है।

(३) वह मुक्त जीव कपालों को खोलकर, जहाँ बालों का अन्त होता है और जो ब्रह्मरन्ध्र की जगह और सुष्मणा का अन्तिम चक्र है, शरीर से निकल जाता है।

(४) शरीर से जीव निकल कर अग्नि, वायु, आदित्य में होता हुआ ब्रह्मलोक में पहुँच कर मुक्ति के आनन्द का उपभोग करने

१—शतञ्चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानमभिनिसृतैकाः।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति॥
कठोपनिषद् ६। १६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है। [२] उसी मुक्तावस्था को, जहां प्राप्तव्य स्वतन्त्रता की पराकाष्ठा हो जाती है, यहां "स्वराज्य" कहा गया है। जीवन-मुक्त को, जो शरीर छोड़ कर अग्नि, वायु आदि में प्रवेश करना पड़ता है, वे साधारण अग्नि, वायु आदि नहीं होते, किन्तु उसके लिये उनकी विशेषता यह होती है कि ये सब उस जीव के लिये ब्रह्म रूप ही होते हैं, क्योंकि अब उसका लक्ष्य केवल ब्रह्म होता है, अन्यों की तो कथा ही क्या, उसे अपनी भी सुधबुध नहीं रहती। "जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है।" वाली कहावत उस पर ठीक रीति से चरितार्थ होती है। इसीलिये यहां भूः रूप अग्नि, भुवः रूप वायु और स्वः रूप आदित्य कहा गया है।

(५) इस प्रकार मुक्त होने पर जीव समस्त इन्द्रिय, मन और बुद्धि का मालिक हो जाता है और उसका अधिकार होता है कि यदि वह चाहे तो उन से जिस प्रकार से भी चाहे काम लेवे[३]।

(६) तब यह जीव ब्रह्म हो जाता है (एतत् ततो भवति)—इस वाक्य के अर्थ अनेक सज्जन खींच तान कर किया करते हैं, कोई कहते हैं कि जीव ब्रह्मांश हो जाता है, कोई कहते हैं कि जीव ब्रह्म के सदृश हो जाता है इत्यादि। परन्तु उपनिषद् वाक्य स्पष्ट है कि "एतत्" (जीव) "तत्" (सच्चिदानन्द) हो जाता है।

---

२ देखो छान्दोग्योपनिषद् में पञ्चाग्नि विद्यान्तर्गत देवयान का प्रकरण।

३ भगवन् श्रोत्रं भवति, इत्यादि (शतपथब्राह्मण कां० १४)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वाक्य में जीव को अपनी सत्ता नष्ट करके ब्रह्म होने का भाव लेश मात्र भी नहीं है। जीव नाम मुक्ति प्राप्त करके ब्रह्मानन्द प्राप्त कर लेता है, तब वह सच्चित् हुए भी सच्चिदानन्द हो जाता है। भवति (हो जाता है) क्रिया स्पष्ट कर रही है कि जीव पहले सच्चिदानन्द नहीं था, अब हुआ है, इसलिये उसे सादि सच्चिदानन्द ही कह सकते हैं, परन्तु ब्रह्म अनादि सच्चिदानन्द है। यह अन्तर सदैव बाकी रहता है। भक्ति और प्रेम की पराकाष्ठता यही है कि प्रेमी अपने प्रियतम के प्रेम में इतना लवलीन हो जावे कि उसे अपनी सुध-बुध बाक़ी न रहे। यह अभेद ज्ञान ही ब्रह्मानन्द की प्राप्ति है। इसी के लिये एक कवि ने कहा है:—"लवलीन हों प्रेम में तेरे ऐसे, सुख की न सुध हो दुख का न भान हो।"

(७) उसी श्रेष्ठ ब्रह्म के लिये कहा गया है कि उसका शरीर आकाश है अर्थात् वह असीम और सर्वव्यापक है, वह सत्यात्मा और सत्य स्वरूप है, प्राण रूपी अपनी सत्ता में निमग्न रहता है, आनन्द ही उसका मन है, शान्ति ही उसकी सम्पत्ति है। ऐसे ब्रह्म की उपासना का आदेश यद्यपि प्राचीन योग्य नामक शिष्य को आचार्य्य ने दिया है। परन्तु असल में प्राचीन योग के लक्ष्य से यह शिक्षा मनुष्य मात्र को दी गई है।

इति षष्ठोनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ सप्तोऽनुवाकः

पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशोऽवान्तरदिशः। अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्षत्राणि। आप ओषधयो वनस्पतय आकाश आत्मा। इत्यधिभूतम्। अथाध्यात्मम् प्राणो व्यानोऽपान उदानः समानः। चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक् त्वक्। चर्म मांसं स्नावास्थि मज्जा। एतदधिविधाय ऋषिरवोचत्। पाङ्क्तं वा इद ꣳ सर्वम्। पाङ्क्तेनैव पाङ्क्तꣳ स्पृणोतीति ॥१॥ सर्वमेकञ्च।

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

अर्थ—(पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौः, दिशः, अवान्तर, दिशः) (१) पृथिवी, (अप्रकाशक लोक,) आकाश, द्यौ (प्रकाशक लोक) दिशायें और उपदिशायें (आग्नेयी आदि) (२) (अग्निः, वायुः, आदित्यः, चन्द्रमाः, नक्षत्राणि) अग्नि, वायु, सूर्य्य, चन्द्रमा और (अन्य) नक्षत्र, (३) (आपः, औषधयः, वनस्पतयः, आकाशः, आत्मा) जल, औषधि, वनस्पति, आकाश और आत्मा (इति अधिभूतम्) ये (तीनों प्रकार का समूह पंचक (बाह्य भूतों से संबन्धित है। (अथ, अध्यात्मम्) अब शरीर के भीतरी पंचकों का वर्णन करते हैं:—(४) (प्राणः, व्यानः, अपानः, उदानः, समानः)। प्राण, व्यान, अपान, उदान, और समान (प्राण पंचक) (५) (चक्षुः, श्रोत्रम्, मनः, वाक्, त्वक्) आंख, कान,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन, वाणी, और त्वचा, (इन्द्रिय पंचक) (६) चर्म, (मांसम्, स्नावा, अस्थि, मज्जा) चर्म, मांस नाड़ी, हड्डी और चर्बी, (धातु पंचक) (एतत्, अधिविधाय) इन (उपर्युक्त पंचकों को) कह कर (ऋषिः, अवोचत्) ऋषि ने बतलाया कि (इदम्, सर्वम्, वै, पाङ्क्तम्) ये सब पांच संख्या वाले हैं (पाङ्क्तेन एव पाङ्क्तम्, स्पृणोति, इति) (एकाकार के पंचकों ही से मनुष्य) दूसरे पंचकों को बलवान बना देता है। (सर्वम्) शब्द के बाद एक वाक्य और है।

व्याख्या—मनुष्य किस प्रकार ईश्वर की ओर चल सकता है और किस प्रकार लोक सेवा करते हुये, अभ्युदय को प्राप्त हो सकता है।

(१) इसका एक मात्र जो उत्तर हो सकता है वही इस अनुवाक में दिया गया है। और वह उत्तर यह है। कि भीतरी पंचकों से बाहरी पंचकों को और बाहरी पंचकों से भीतरी पंचकों को बलवान बनाओ; बाहर और भीतर के प्रत्येक अंगो को, इस प्रकार पुष्ट बना लेने से, मनुष्यों के आत्मा, मन और शरीर सब बलवान हो जाते हैं और इस प्रकार बलवान बन कर पुरुषार्थमय जीवन व्यतीत करने से उनके लोक और परलोक दोनों सुधर जाया करते हैं।

(२) उपनिषद् के इस अनुवाक में बाहर के ३ और भीतर के भी ३ ही पंचकों का विवरण दिया गया है। आत्मा को छोड कर बाहर के ३ पंचकों के अवशिष्ट भाग, मनुष्य के स्थूल शरीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बनाते और स्थिर रखते हैं। पंचभूतों से शरीर बनता और बाह्य शीतोष्ण तथा वायु, जल और औषधि आदि से स्थिर रहा करता है। इस लिये पहला कर्तव्य तो यह हुआ कि शरीर के बनाने और स्थिर रखने वाले पंचकों और शरीर के बीच में मेल (Harsmony) रखने का प्रयत्न करना चाहिये। दूसरा कर्तव्य यह है कि स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर आदि भीतरी पंचकों में भी, मेल रखना चाहिये।

(३) बाह्य पंचकों में, तीसरे पंचकों के अन्त का अङ्ग, आत्मा है आत्मा का अर्थ विश्वात्मा है जो सारे ब्रह्माण्ड में परिपूर्ण है, इस (विश्वात्मा) की बाह्य पंचकों में, गणना इस लिये की है कि जिस प्रकार बाह्य स्थूल भूतों और शरीर में मेल रहना चाहिये इसी प्रकार विश्वात्मा (परमात्मा) और शरीर के अन्तर्गत होने वाले जीवात्मा में भी मेल होना चाहिये अर्थात् जीवात्मा को विश्वात्मा के अनुकूल होना चाहिये तभी आत्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति हुआ करती है।

इति सप्तमोऽनुवाकः

अथ अष्टमोऽनुवाकः

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदꣳ सर्वम्। ओमित्येतदनुकृति ह स्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति। ओमिति सामानि गायन्ति। ओꣳ शोमिति शस्त्राणि शंसन्ति। ओमित्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वर्युः प्रतिगरं गृणाति । ओमिति ब्रह्मा प्रस्तौति । ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति । ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह । ब्रह्मोपाप्नुवानीति । ब्रह्मैवोपाप्नोति । (ओं दश) ॥६॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ।

अर्थ— (ओम्, इति, ब्रह्म) ओम् यह ब्रह्म (महान) है। (ओम्, इति, इदम्, सर्वम्) ओम् यह सब कुछ है। (ओम्, इति, एतत्, अनुकृति) ओम् यह अनुकरण करना अथवा आज्ञानुवर्ती होना है। (ह, स्म, वै) प्रसिद्ध है कि (ओम्) संबोधन वाचक है (विद्यार्थी, अपि) कुञ्च (श्रावय, इति) सुनाओ ? (ऐसा कहने पर,) (ओम् स्वीकार वाचक होने से) ओम् कह कर वे (आश्रावयन्ति) सुनाते हैं। (ओम्, इति, सामानि, गायन्ति) ओम् कह कर ही साम गान करते हैं। (ओम्, शोम्, इति) ओं शम् (शम्+ओम्=शमोम्=शोम्) ऐसा उच्चारण कर के (शस्त्राणि) ऋग्वेद के ऐसे मंत्रों को जो गायन नहीं किये जाते, (शंसन्ति) उच्चारण करते हैं। (ओम्+ इति) ओम् कह कर ही (अध्वर्युः) यजुर्वेदी ऋत्विज (प्रतिगरम्) यजुर्वेद के प्रोत्साहक मंत्रों को (गृणाति) पढ़ता है। (ओम्, इति) ओम् कह कर ही (ब्रह्मा, प्रस्तौति) ब्रह्मा ईश्वर स्तुति करता है। (ओम्, इति) ओम् कह कर ही (अग्नि होत्रम्) हवन करना (अनुजानाति) स्वीकार करता है, अथवा हवन करने की अनुज्ञा देता है। (ओम्, इति) ओम् कह कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही विद्वान् वेद का प्रवचन करने की इच्छा करता है जिस से (ब्रह्म, उपाप्नुवान्, इति) ब्रह्म को प्राप्त होऊं और वह (ब्रह्म, एव, उपाप्नोति) ब्रह्म को अवश्य प्राप्त कर लेता है॥

("ओम्, दश" अर्थात् इस अनुवाक में १० वाक्य हैं)

व्याख्या—मनुष्य जब इस से पूर्व अनुवाक में कहे अनुसार अपनी आत्मा और मन आदि को बलवान बनालेता है तब उस में उच्च कोटि की आस्तिक बुद्धि पैदा होती है और उसका प्रत्येक कार्य्य उसी बुद्धि से प्रभावित हुआ करता है। वह ईश्वर को महान समझने लगता है और उस के प्रेम में इतना मग्न हो जाता है कि सब में और सब कुछ उसे ओम् (ईश्वर) ही दिखलाई देने लगता है। जिस प्रकार एक लोहे के गोले को जब ख़ूब तपा लेते हैं और वह लाल अंगारे के सदृश हो जाता है तब उस गोले को लोहा कहें तब भी ठीक है और यदि अग्नि कहें तब भी ठीक है क्योंकि जो वस्तु भी उस के संपर्क में आती है उसे ही जला दिया करता है। इसी प्रकार जगत् तो लोहे के गोले की सदृश है ब्रह्माग्नि अपने सर्व व्यापकत्व से उस में अग्निवत् व्यापक है—इस दशा में यदि जगत् को प्रकृति कहें तो भी ठीक है, यदि ब्रह्म कहें तब भी ठीक है। परन्तु जिस प्रकार लोहा और अग्नि उस गोले में प्रथक् प्रथक् जाने और माने जाते हैं इसी प्रकार जगत् में भी प्रकृति और पुरुष (ओम्=ईश्वर) प्रथक् प्रथक् जाने और माने जाया करते हैं। न प्रकृति ईश्वर हो जाती है, न ईश्वर प्रकृति—प्रेमी चूंकि ईश्वर के प्रेम में मग्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और उसी में लवलीन हो रहा है इसलिये उसे प्रकृति नहीं अपितु ईश्वर ही ईश्वर सब जगह दिखलाई देने लगता है। इसी लिये यहां कहा गया है कि "ये सब कुछ ओम् ही है"।

(२) ओम् स्वीकारी के अर्थ में भी प्राचीन काल में प्रयुक्त हुआ करता था इसलिये जब किसी से कहा जाता था कि मंत्र पाठ करो तो वह "ओम्" कह कर अर्थात् स्वीकार कर के मंत्र पाठ करने लगता था।

(३) प्रत्येक लोक और परलोक सम्बन्धी कार्य्य का प्रारम्भ आस्तिकता के प्रभाव से ओ३म् कह कर ही किया जाया करता था, यदि कोई साम गान करता था तो ओ३म् कह कर ही गाना शुरू करता था। ऋग्वेद और यजुर्वेद का मंत्रोच्चारण भी ओ३म् कह कर ही किया जाता था। ब्रह्मा यज्ञ में अपना कार्य्य भी ओ३म् ही से प्रारम्भ करता था—ओ३म् कह कर ही यज्ञ और प्रवचन किये जाते थे और ये सब ईश्वर प्राप्ति ही के लिये किये जाते थे और ऐसा करने वाले ईश्वर को प्राप्ति भी कर लिया करते थे।

इति अष्टमोऽनुवाकः।

अथ नवमोऽनुवाकः

ऋतञ्च स्वाध्याय प्रवचने च। सत्यञ्च स्वाध्याय प्रवचने च। तपश्च स्वाध्याय प्रवचने च। दमश्च स्वाध्याय प्रवचने च। शमश्च स्वाध्याय प्रवचने च। अग्न-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यश्च स्वाध्याय प्रवचने च। अग्निहोत्रञ्च स्वाध्याय प्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्याय प्रवचने च। मानुषञ्च स्वाध्याय प्रवचने च। प्रजा च स्वाध्याय प्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्याय प्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्याय प्रवचने च। सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः। तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः। स्वाध्याय प्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः। तद्धितपस्तद्धि तपः ॥९॥ प्रजा च स्वाध्याय प्रवचने च षट् च॥ १०॥

इति नवमोऽनुवाकः॥

अर्थ और व्याख्या—ईश्वर के प्रेम को, हृदय में भरपूर रखने के लिये, स्वाध्याय और प्रवचन की आवश्यकता है। स्वाध्याय दो प्रकारका होता है:—(१) शास्त्रों का नियमपूर्वक अध्ययन और मनन करना। (२) आत्माध्ययन=आत्म निरीक्षण अर्थात् अपने कृत्यों पर दृष्टि रखते हुए जो बुरे हों उन्हें छोड़ने और जो भले हों उन्हें पुनः करने की दृढ़ इच्छा अपने भीतर उत्पन्न करते रहना। (अध्यापन आदि के द्वारा) वेद के प्रचार को प्रवचन कहते हैं। इस अनुवाक में शिक्षा यह दी गई है कि समस्त कार्य्य करते हुए भी स्वाध्याय और प्रवचन अर्थात् वेद के विचार और प्रचार को सदैव अपना लक्ष्य बनाये रखना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये। कुछ कार्य्यों का विवरण इस अनुवाक में दिया गया है:—

(१) ऋतम्—तीनों काल में एक जैसी रहनेवाली वेदाज्ञा पर चलना।

(२) सत्यम्—मन, वाणी और कर्म में समता का होना।

(३) तपः—द्वन्द्वों का सहना और नियमित जीवन बनाना।

(४) दमः—इन्द्रियों पर अपना अधिकार रखना।

(५) शमः—अन्तःकरणों का शान्त रखना।

(६) अग्नयः—ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ सम्बन्धी तीनों प्रकार की अग्नियों को स्थापित करना।

(७) अग्निहोत्रम्—प्रतिदिन हवन करना।

(८) अतिथयः—अतिथियों की सेवा करना।

(९) मानुषम्—लोक व्यवहार।

(१०) प्रजा—सन्तान का पालन और पोषण।

(११) प्रजनः—सन्तान पैदा करना।

(१२) प्रजातिः—पौत्रादि का उत्पन्न होना।

(१) (सत्यम्, इति, सत्यवचा, राथीतरः) सत्य ही (श्रेष्ठतम है) ऐसा, सत्यवादी रथीतर का पुत्र राथीतर मानता था।

(२) (तप, इति, तपोनित्यः, पौरुशिष्टिः) तप ही (प्रधान है) ऐसा, नित्य तपस्वी पुरुशिष्ट का पुत्र पौरुशिष्ट (मानता था)।

(३) (स्वाध्याय, प्रवचने, एव, इति, नाकः, मौद्गल्यः) स्वाध्याय और प्रवचन ही (मुख्य हैं) ऐसा मुद्गल का पुत्र "नाक" शिक्षा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देता था क्योंकि (तत् हि, तपः) वह (स्वाध्याय) ही तप है (तत्, ही, तपः) वह (प्रवचन) ही तप है।

यहाँ यह नहीं समझना चाहिये कि इन उपर्युक्त विद्वानों में विचार भेद है क्योंकि इन में जो जिस बात को मुख्य मानता था उसके सिवा अन्य बातों को गौण रीति से जरूर मानता था, इस प्रकार चारों सत्य, तप, स्वाध्याय और प्रवचन को मानते थे, केवल मुख्यता और गौणता का भेद था।

("प्रजा च स्वाध्याय प्रवचने च" के बाद ६ वाक्य और हैं)

इति नवमोऽनुवाकः ॥

अथ दशमोऽनुवाकः

अहं वृक्षस्य रेरिव। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्वो पवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि। द्रविणं ँ सवर्चसम्। सुमेधाऽमृतोऽक्षितः। इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् ॥१॥ इति दशमोऽनुवाकः॥ (अहं षट्)

अर्थ—(अहम्, वृक्षस्य, रेरिव) मैं (शरीर रूपी) वृक्ष का वाहक हूं, (कीर्तिः, गिरेः, पृष्ठम्, इव) मेरी कीर्ति पहाड़ की चोटी की तरह (ऊँची अथवा फैली हुई) है। (ऊर्ध्वः, पवित्रः, वाजिनि, इव, स्वमृतम्, अस्मि) ऊँची पवित्रता वाला, उद्योगी प्राणी की तरह उत्तम अमृत हूँ। (सवर्चसम्, द्रविणम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेजस्विता वाला धन हूँ। (सुमेधा, अक्षितः, अमृतः) अच्छी बुद्धि वाला और न क्षीण होने वाला अमृत हूँ। (इति, त्रिशङ्कोः वेद, अनुवचनम्) यह त्रिशंकु का वेदोपदेश है।

व्याख्या—(अहम् के बाद ६ वाक्य इस अनुवाक में हैं) वेद की शिक्षानुसार मनुष्य को कैसा होना चाहिए? यही उपदेश किसी महा पुरुष त्रिशंकु ने किया है—वह कहता है कि मनुष्य को सब से पहले यह विश्वास होना चाहिये कि मैं शरीर का स्वामी और वाहक हूँ, शरीर को मेरे अधिकार में रहना चाहिए, साथ ही मुझे उत्तम और विस्तृत कीर्ति वाला, पवित्र, पुरुषार्थी, न क्षीण होने वाले अमृत के तुल्य तेजस्विता पूर्ण सम्पत्ति रूप, और उत्तम बुद्धि युक्त होना चाहिए। अपनी ओर से जो शिक्षा देनी चाहिये थी उसके देने के बाद, उपनिषद्कार ने जिस प्रकार राथीता आदि महा पुरुषों की शिक्षाओं का उल्लेख किया है, उसी प्रकार, त्रिशंकुके उपर्युक्त वेदोपदेश को भी उद्धृत किया है।

इति दशमोऽनुवाकः॥

अथ एकादशोऽनुवाकः

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥१॥ देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृ देवो भव । आचार्य देवो भव । अतिथि देवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि । तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि । यान्यस्माकं सुचरितानि । तानि त्वयोपास्यानि ॥२॥ नो इतराणि । ये के चास्मच्छ्रेया ꣳसो ब्राह्मणाः । तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम् । श्रद्धया देयम् । अश्रद्धया देयम् । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् । अथ यदि ते कर्म विचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ॥३॥ ये तत्र ब्राह्मणाः संदर्शिनः, युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्तेरन् । तथा तत्र वर्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु । ये तत्र ब्राह्मणाः संदर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तेषु वर्तेरन् । तथा तेषु वर्तेथाः । एष आदेशः । एष उपदेशः । एषा वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् । एवमुचैतदुपास्यम् ॥४॥ (स्वाध्याय प्रवचनाभ्यं न प्रमदितव्यम् । तानि त्वयो-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास्यानि । विचिकित्सा वा स्यात्तेषुवर्तेरन् सम्म च) ।

इति एकादशोऽनुवाकः ।

अर्थ—(आचार्यः, वेदम्, अनूच्य, अन्तेवासिनम्, अनुशास्ति) । आचार्य वेद पढ़ाकर, समीप रहने वाले (शिष्य) को, उपदेश करता है । (सत्यं वद) सच बोलो (धर्मं चर) धर्म का आचरण करो । (स्वाध्यायात्,मा प्रमदः) स्वाध्याय से प्रमाद न कर। (आचार्याय,प्रियम्,धनम् आहृत्य) आचार्य के लिये प्रिय धन को लाकर अर्थात् शिक्षा समाप्ति के बाद उचित दक्षिणा देकर (प्रजातन्तुं, मा, व्यवच्छेत्सीः) प्रजा के सूत्र को मत तोड़ अर्थात् ब्रह्मचर्य्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर। (सत्यात्, न, प्रमदितव्यम्) सच बोलने से प्रमाद न कर । (धर्मात्, न, प्रमदितव्यम्) धर्म से अर्थात् धर्माचरण करने से आलस्य न कर । (कुशलात्, न, प्रमदितव्यम्) कुशल (जो कुछ उपयोगी और कल्याण प्रद है उस) से प्रमाद न कर । (भूत्यै, न, प्रमदितव्यम्) ऐश्वर्य के बढ़ाने से प्रमाद न कर। (स्वाध्याय प्रवचनाभ्याम्, न, प्रमदितव्यम्) पढ़ने और पढ़ाने से प्रमाद न कर ॥१॥ (देव पितृ कार्याभ्याम्,न, प्रमदितव्यम्) देव और पितृ सम्बन्धी कार्यों (यज्ञों) से प्रमाद न कर ।

(मातृ, देवः, भव) माता को देवी मानने वाला हो । (पितृ देवः भव) पिता को देव मानने वाला हो । (आचार्य देवः भव) आचार्य को देव मानने वाला हो । (अतिथि देवः, भव)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिथि को देव मानने वाला हो। (यानि, अनवद्यानि, कर्माणि) जो अनिन्दित कर्म हैं, (तानि, सेवितव्यानि) उनका सेवन कर। (नो, इतराणि) अन्यों का नहीं। (यानि, अस्माकम्, सुचरितानि) जो हमारे अच्छे कर्म हैं, (तानि, त्वया, उपास्यानि) उनका तुम्हें सेवन करना चाहिये ॥ २ ॥ (नो, इतराणि) अन्यों का नहीं। (ये, के, च, अस्मत्, श्रेयांसः, ब्राह्मणाः) और जो कोई हमसे श्रेष्ठ अन्य ब्राह्मण हैं (तेषाम्, त्वया, आसनेन, प्रश्वसितव्यम्) उनका तुमको आसन (आदि सुख सामिग्री) से सत्कार करना चाहिये। (श्रद्धया, देयम्) श्रद्धा से दान करना चाहिये ॥ १ ॥ (अश्रद्धया,* देयम्) अश्रद्धा से दान करना चाहिये। (श्रिया, देयम्) प्रसन्नता से देना चाहिये। (ह्रिया, देयम्) लज्जा से देना चाहिये। (भिया, देयम्) भय से देना चाहिये। (संविदा, देयम्) प्रेमभाव से देना चाहिये। (अथ, यदि) और जो (ते) तुमको (कर्म विचिकित्सा) कर्म में संदेह हो (वा, वृत्तविचिकित्सा, स्यात्) अथवा वृत्त (आचार व्यवहार) में संदेह हो ॥ ३ ॥ (ये) जो (तत्र)

---

* शंकराचार्य ने (अश्रद्धया देयम् के) अर्थ किये हैं कि अश्रद्धा से (अदेयम्) नहीं देना चाहिये, परन्तु विद्यारण्य स्वामी और राघवेन्द्रयति आदि ने "अश्रद्धया+अदेयम्" नहीं अपितु "अश्रद्धया+देयम्" ही समझ कर अश्रद्धा से भी देना चाहिये, ऐसे ही अर्थ किये हैं और यही ठीक भी मालूम होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ (युक्ताः) धर्म करने में स्वयं प्रवृत्त या (आयुक्ताः) किसी प्रेरणा से धर्म कार्य्य करने वाले (अलूक्षाः) निर्दयता रहित (धर्म कामाः) धर्मात्मा (संदर्शिनः) सम्यक् विचार करने में समर्थ (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण (स्युः) हों (यथा, ते, तत्र, वर्तेरन्) जैसा वे वहां व्यवहार करते हों (तथा, तत्र, वर्तेथाः) वैसा ही वहां तुम भी व्यवहार करो । (अथ, अभ्याख्यातेषु) और जिस (विषय) में मतभेद हो तो (ये, तत्र, युक्ताः, आयुक्ताः, अलूक्षाः, धर्म कामाः, संदर्शिनः, ब्राह्मणाः, स्युः) जो वहां स्वयं प्रवृत्त अथवा प्रेरणा से प्रवृत्त, दयालु, धर्मात्मा और सम्यक् विचारशील, ब्राह्मण हों (यथा, ते, तेषु, वर्तेरन्) जैसा वे उन (मतभेद वाले विषयों) में वर्तें (तथा, तेषु, वर्तथाः) वैसा ही उनमें तुम भी वर्तो । (एषः, आदेशः) यह (वेद शास्त्र का) आदेश है । (एषः, उपदेशः) यही (हमारा) उपदेश है (एषा, वेदोपनिषत्) यही वेदोपनिषद् है (एतत् , अनुशासनम्) यही अनुशासन (शिक्षा) है । (एवम् , उपासितव्यम्) ऐसा ही आचरण करना चाहिये (एवम् , उ, च, एतत् , उपास्यम्) ठीक ऐसा ही अनुष्ठान करने योग्य है ॥ ४ ॥

(इस अनुवाक के तीन खंडों के अन्तिम वाक्य ये हैं:—

स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥१॥

तानि त्वयो पास्यनि ॥२॥

विचिकित्सा वा स्यात् ॥३॥

और चौथे खण्ड के "तेषु वर्तेरन्" वाक्य के बाद ७ वाक्य और हैं ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्या— शिक्षा समाप्त होने पर, आचार्य्य ने ब्रह्मचारी शिष्य को, अन्तिम और कुछेक क्रियात्मक बातों को शिक्षा, इस अनुवाक में दी है, जिन पर आज भी प्रत्येक छात्र को, ध्यान देने की जरूरत है :—

(१) सच बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय करने में कभी प्रमाद न करो।

(२) शिक्षा समाप्त करने पर, आचार्य्य को उचित दक्षिणा देनी चाहिये।

(३) ब्रह्मचर्य्याश्रम समाप्त करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके सन्तान पैदा करनी चाहियें।

(४) सत्याचरण, धर्म पूर्वक व्यवहार करने, जो कुछ उपयोगी और कल्याण प्रद है, उसके प्राप्त करने, ऐश्वर्य्य के बढ़ाने, पढ़ने पढ़ाने, और देव और पितरों से सम्बन्धित कार्य करने में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

(५) माता, पिता, आचार्य्य और अतिथि को सदैव देवों की कोटि का, मानते रहना चाहिये।

(६) जो आनन्दित (अच्छे) कर्म हैं, उन्हीं को करना चाहिये अन्य बुरे कर्मों को कभी नहीं करना चाहिये।

(७) गुरु के भी, अच्छे ही आचरणों का अनुकरण करना चाहिये अन्यों का नहीं।

(८) जो कोई भी विद्वान् घर पर आवे तो उस का सदैव सत्कार करना चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९) श्रद्धा से, अश्रद्धा से, प्रसन्नता से, अन्यों की लज्जा से, भय से और प्रेम भाव से, जैसी भी सूरत हो प्रत्येक अवस्था में दान करना चाहिये।

(१०) कैसा कर्म करना चाहिये, किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये? यदि इस मामले में कभी सन्देह उत्पन्न हो जावे तो जहां तुम रहते हो वहां अथवा उसके आस पास जो धर्माचरण करने वाले विद्वान् हैं चाहे वे किसी राजा या समाज के नियुक्त किये गये हैं अथवा स्वयं प्रवृत हैं और क्रूरता से शून्य और धार्मिकता युक्त हैं, और जो सम्यक् विचार करने में समर्थ हों संदिग्ध विषय में जैसा वे आचरण करते हों, वैसा ही तुम को भी करना चाहिये।

(११) यदि किसी विषय में मत भेद हो कि एक काम एक प्रकार से करना चाहिये या दूसरे प्रकार से अथवा यह करना चाहिये या वह? तो भी जो समीपवर्ती स्वयं प्रवृत्त अथवा अन्यों से प्रेरित होकर प्रवृत्त, दयालु, धर्मात्मा और सम्यक् विचार करने में समर्थ विद्वान् हों, जैसा वे करते हों वैसा ही तुम को भी करना चाहिये।

उपर्युक्त ग्यारह प्रकार की शिक्षा देने के बाद आचार्य्य ने बतलाया है कि ये सभी शिक्षायें वेदानुकूल और कर्तव्य हैं इसी लिये इन्हें वेदोपनिषद् भी कहा गया है और इसी के अनुकूल आचरण करने का स्वयं भी उपदेश दिया है।

इति एकादशोऽनुवाकः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ द्वादशोऽनुवाकः

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम्। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवीन्माम्। आवीद्वक्तारम्। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ (सत्यमवादिषम् पञ्च च)

अर्थ—(मित्रः, नः, शम्) मित्र हमारे लिये कल्याणकारी हो, (वरुणः, शम्) श्रेष्ठ (ईश्वर) सुखदायी हो, (अर्यमा) न्यायकारी ईश्वर (नः, शम्, भवतु) हमारे लिये सुख कारक हो। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान (बृहस्पतिः) वेदवाणी का स्वामी (ईश्वर) (नः, शम्) हमारे लिये सुख कर हों। (उरुक्रमः) महा पराक्रमी (विष्णुः) व्यापक (ईश्वर) (नः शम्) हमारे लिये सुख दायक हों। (२) (नमो ब्रह्मणे) ब्रह्म को नमस्कार हो। (नमस्ते, वायो) हे सर्वाधार (ईश्वर) आपको नमस्कार हो। (त्वम्, एव) आप ही (प्रत्यक्षं, ब्रह्म) प्रत्यक्ष ब्रह्म (असि) हैं। (त्वम्, एव) आप ही को मैंने (प्रत्यक्षं, ब्रह्म, अवादिषम्) प्रत्यक्ष ब्रह्म कहा (ऋतम्, अवादिषम्) दिव्य सत्य कहा। (सत्यम्, अवादिषम्) सत्य कहा (तत्, माम्, आवीत्) उसने मेरी रक्षा की, (तत्, वक्तारम्,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवीत्) उसने वक्ता (आचार्य्य) की रक्षा की, (आवीत्,माम्) रक्षा की मेरी (आवीत्,वक्तारम्) रक्षा की उपदेष्टा की।

व्याख्या—उपर्युक्त मंगलाचरण के वे ही वाक्य हैं जिनसे इस वल्ली अथवा उपनिषद् का प्रारम्भ हुआ था। अन्तर केवल इतना है कि दूसरे वाक्य में यहां भविष्यत की जगह भूत कालिक क्रियायों का प्रयोग हुआ है। प्रारम्भ में था कि तुझको प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा यहां यह है कि तुझको प्रत्यक्ष ब्रह्म कहा। इत्यादि। (इस अनुवाक में "सत्यं अवादिषम्" के बाद पांच वाक्य और हैं)

इति द्वादशोऽनुवाकः

(१) शन्नः शीक्षाꣳसह नौ, यश्छन्दसां, भूः, स यः पृथिव्योमित्यृतञ्चाहं वेदमनूच्य शन्नो द्वादश ॥१२॥

(२) शन्नो मह इत्यादित्यो नो इतराणित्रयोविꣳशतिः ॥२३॥

(१) (इस वल्ली में १२ अनुवाक हैं। वल्ली के अंत में प्रत्येक अनुवाक के प्रारम्भ के शब्द "शन्नः" आदि ग्रन्थ की रक्षार्थ लिख दिये हैं)।

(२) अनुवाकों के अन्दर जो अङ्क पड़े हैं, वे असल में विषय के आरम्भ आदि की दृष्टि से नहीं हैं किन्तु जहां १० वाक्य पूरे होते हैं वहीं अङ्क डाले गये हैं। इस प्रकार "शन्नो" प्रारम्भ से लेकर, "मह इत्यादि" से पहले वाक्य तक दस दहाई (१०० वाक्य) पूरी हो गई हैं, उसके बाद मह इत्यादि से लेकर "नोइतराणि" से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले वाक्य तक दस दहाई (१०० वाक्य) और पूरी हो गई हैं। उसके बाद "नोइतराणि" से लेकर वल्ली की समाप्ति तक ३ दहाई और हुईं, इस प्रकार पूरी वल्ली में कुल २३ दहाई हैं। यही अभिप्राय दूसरे शब्द संग्रह का है। वल्ली की समाप्ति पर ग्रन्थ रक्षार्थ, ये दो शब्द संग्रह दिये गये हैं।

इति शीक्षाध्यायः प्रथमावल्ली ।

अथ ब्रह्मानन्द वल्ली

ओ३म् सहनाववतु सहनौभुनक्तु सहवीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

अर्थ—(नौ, सह, अवतु) (ईश्वर) हम दोनों (गुरु और शिष्य) की साथ साथ रक्षा करें। नौ, सह, भुनक्तु) हम दोनों को साथ साथ पाले (भोगने का अवसर दे) (वीर्यम्, सह, करवावहै) हम दोनों को साथ साथ बल देवें। (नौ, अधीतम्, तेजस्वि, अस्तु) हम दोनों का पढ़ना पढ़ाना तेज युक्त हो। (मा, विद्विषावहै) हम दोनों आपस में (कभी) द्वेष न करें। तीनों प्रकार के दुख हमारे लिये शान्त रहें।

व्याख्या—उपर्युक्त वाक्य, इस वल्ली का मंगलाचरण है। शिक्षा समाप्ति के लिये आवश्यक है कि गुरु और शिष्य में मेल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सहानुभूति रहे। इसी उद्देश्य से यह प्रार्थना की गई है यदि गुरु और शिष्य दोनों की रक्षा, भोग, बल वृद्धि और तेजस्विता प्राप्ति के साधन, दोनों के लिये, साथ साथ काम में आते रहें और वे दोनों परस्पर ईर्ष्या द्वेष न करने का निश्चय किये रक्खें, तो निश्चित रीति से उनके मध्य सद्भावना बनी रह सकती है।

अथ प्रथमोऽनुवाकः।

ओ३म्। ब्रह्मविदाप्नोति परम्। तदेषाभ्युक्ता। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह। ब्रह्मणा विपश्चितेति। तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः। तस्येदमेव शिरः। अयं दक्षिणः पक्षः। अयमुत्तरः पक्षः। अयमात्मा। इदं पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति॥

इति प्रथमोऽनुवाकः।

अर्थ— ब्रह्मवित्, परम्, आप्नोति) ब्रह्मवेत्ता परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। (तत्, एषा, अभि-उक्ता) इस विषय में यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ऋचा) कही गई है:—(सत्यम्, ज्ञानम्, अनन्तम्, ब्रह्म) सत्य, ज्ञानस्वरूप और अनन्त ब्रह्म है। (यः), जो (उसको) (परमे, व्योमन्) अत्यन्त सूक्ष्म (गुहायाम्) हृदयाकाश में (निहितम्, वेद) निहित (स्थित वा छिपा हुआ) जानता है, (सः, सर्वान्, कामान) वह समस्त कामनाओं को (सह, विपश्चिता, ब्राह्मणा, अश्नुते, इति) सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ (मिल कर) प्राप्त कर लेता है। (वै, तस्मात्, एतस्मात्, आत्मनः, आकाशः सम्भूतः) निश्चय उस इस परमात्मा से आकाश उत्पन्न हुआ। (आकाशात्, वायुः) आकाश से वायु। (वायोः, अग्निः) वायु से अग्नि। (अग्नेः, आपः) अग्नि से जल (अद्भ्यः, पृथिवी) जल से पृथिवी। (पृथिव्याः, ओषधयः) पृथिवी से औषधि। (ओषधीभ्यः, अन्नम्) औषधी से अन्न। (अन्नात्, रेतः) अन्न से वीर्य। (रेतसः, पुरुषः) वीर्य से पुरुष। (सः, वै, एषः पुरुषः, अन्नरसमयः) सो निश्चय यह पुरुष अन्न रसमय है। (तस्य, इदम्, एव, शिरः) उसका यही शिर है। (अयं, दक्षिणः, पक्षः) यह (शरीर का) दाहना अंग है। (अयं, उत्तरः, पक्षः) यह बायां अङ्ग है। (अयं, आत्मा) यह धड़ है, (इदम्, पुच्छम्, प्रतिष्ठाः) यह पूंछ निकलने का स्थान आधार (आश्रय स्थान) है। (तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति) इस विषय में यह श्लोक भी है।

व्याख्या—इस अनुवाक में दो बातें कही गई हैं और अन्त में पंच कोशों का विवरण देना आरम्भ किया गया है:—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) ब्रह्मवित्, अन्तर्मुख होकर हृदयाकाश को ब्रह्म की प्राप्ति का स्थान जानकर, उसे (ब्रह्म को) उसी स्थान में, प्राप्त कर लेता है; और उसे प्राप्त करके अपनी समस्त कामनाओं की सिद्धि भी कर लेता है।

(२) उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये श्रद्धा अपेक्षित है और वह, ईश्वर की ब्रह्माण्ड रूपी महान् रचना पर दृष्टिपात करने और उसे समझ लेने से, प्राप्त हुआ करती है, इसलिये उचित रीति से यहां सृष्टि की उत्पत्ति का संकेत किया गया है। पहली बात तो स्पष्ट है कि ब्रह्म ज्ञानी, ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करके, ब्रह्म को प्राप्त कर लिया करता है और यह भी कि ब्रह्म के प्राप्त कर लेने से, उसकी कोई कामना असिद्ध नहीं रहा करती है। दूसरी बात यह कि जगत् की रचना पर विचार करने से, श्रद्धा उत्पन्न हो जाया करती है, कुछ संक्षिप्त सी व्याख्या की अपेक्षा रखती है। वैदिक धर्मानुसार सृष्टि की रचना का प्रकार, इसी प्रकार है जैसा कि इस अनुवाक में संकेत किया गया है:—

सृष्टि की रचना का स्थूल ढाँचा

दिन रात की तरह, सृष्टि और प्रलय का चक्र, प्रवाह से नित्य है, यह सृष्टि अचानक नहीं पैदा हो गई है किन्तु असंख्य सृष्टियों की माला का एक दाना है। प्रलय में प्रकृति अपने असली रूप में जिसे सांख्य के शब्दों में सत, रज और तम की साम्यावस्था कहते हैं, रहा करती है। उस समय प्रकृति में, गति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शून्यता (Imertia) जो उसकी प्रकृति है, रहा करती है । प्रलय का यह तारतम्य टूटे और जगत् बनना शुरू हो, इस के लिये गति की जरूरत हुआ करती है। वह गति ईश्वर से प्राप्त हुआ करती है। परन्तु ईश्वर के लिये कहा जाता है कि उसका ज्ञान, बल और क्रिया सब स्वाभाविक हैं, फिर वह गति किस प्रकार हो सकता है ? इसका उत्तर यह है कि यह गति देना भी, उस (ईश्वर) की एक स्वाभाविक क्रिया है, जो प्रत्येक जगत् की उत्पति के समय स्वभावतः प्रकट हो जाया करती है जिसका विवरण इस प्रकार है:—प्रलय की समाप्ति पर, एक स्वाभाविक इच्छा जगत् कर्ता ईश्वर में प्रादुर्भूत होती है कि "प्रलय समाप्त हुई जगत बनना चाहिये।" यह इच्छा, मनुष्यों की भाँति अप्राप्त वस्तु की इच्छा न समझी जावे, इसलिये उपनिषद् ने, इस इच्छा का नाम 'ईक्षण' तप का 'तपना' आदि रक्खा है। इस स्वाभाविक इच्छा से, सदैव की भाँति, एक स्वाभाविक गति उत्पन्न हो जाती है। गतिसे पहले इच्छा होनी चाहिये (will preceeds motion) इस नियम के अनुसार इच्छा से उत्पन्न गति, प्रकृति की गति शून्यता का भङ्ग करके उसमें गति का सञ्चार करती है । सांख्य के शब्दों में, इसी का नाम, सत रज और तम की साम्यावस्था का विषमावस्था में परिवर्तित हो जाना है। इस ईश्वर प्रदत्त गति से, कारणावस्था में वर्तमान प्रकृति, कारण से कार्य्य बनने के लिये अथवा सूक्ष्म से स्थूल होने की ओर प्रवृत्त होती है। वैशेषिक की मर्यादानुसार इसका नाम अव्यक्त परमाणुओं का व्यक्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने की ओर प्रवृत्त होना है। इस प्रकार कारण को कार्य्य बनने की अवस्था प्राप्त करने के लिये बहुत काल की अपेक्षा होती है। उस अवस्था के प्राप्त हो जाने पर, प्रकृति सूक्ष्म से सूक्ष्म रहने पर भी इस योग्य हो जाती है कि कार्यावस्था में, उसका नाम रखा जा सके। यह कार्यावस्था इस योग्य नहीं होती कि किसी प्रकार से भी, उसे स्थूल जगत् में, प्रत्यक्ष किया जा सके। इस सूक्ष्म कार्यावस्था प्राप्त प्रकृति के जिसे अब विकृति कहना अधिक उचित है, नाम और काम इस प्रकार हैं:—

(१) महत्तत्त्व—सूक्ष्म भूतों में, यह, सब से अधिक सूक्ष्म है। मनुष्य के सूक्ष्म शरीर निर्माणार्थ, इस भूत का जो अंश उसके शरीर में जाता है, उसे बुद्धि कहते हैं।

(२) अहङ्कार—मनुष्य में, इस भूतके, अपेक्षित अंश के जाने से, ममता (मेरे और तेरे का भाव) पैदा हुआ करती है। इस भूत के उत्पन्न होने से पहिले, समस्त विकृति समष्टि रूप में रहा करती है। इस भूत के उत्पन्न होने के बाद ही से उन में व्यष्टित्व ("व्यक्तत्व=Individuality) में परिवर्तित होने की योग्यता आजाती है।

(३) पञ्चतन्मात्रा—इन तन्मात्राओं शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के उत्पन्न होने से, स्थूल भूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी) के निकट तम (Immediate cause) कारण की उत्पत्ति हो जाती है। मनुष्य शरीर में इन के समावेश से सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियों की विषयों की पूर्ति होती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८ से १८) दशेन्द्रिय और मन—इन ग्यारहों वस्तुओं (भूतों) के जो अंश शरीर में जाते हैं, उनको १० इन्द्रिय और मन कहते हैं।

नोट:—अहङ्कार को छोड़ कर अन्य १७ सूक्ष्म भूतों के समुदाय का नाम सूक्ष्म शरीर हुआ करता है। विकृत रूप में परिवर्तित प्रकृति में भेद भाव आजाने और प्राणियों में उसके परिणाम रूप ममता के पैदा हो जाने से अहङ्कार का कार्य्य पूरा हुआ समझा जाता है इसीलिये उस की गणना सूक्ष्म शरीर के अवयवों में नहीं की जाती है।

यहाँ तक सूक्ष्म भूतों के उत्पन्न हो जाने से, प्रकृति की समस्त संभव आकाश (Space) में फैली हुई स्थिति में, दरजे (Decree) का भेद तो अवश्य हो जाता है परन्तु श्रेणी (Kind) का भेद नहीं होता और स्थिति वही बनी रहती है जिस के लिये वेद ने कहा है:—"तमासतिमसा गूढमग्रे" × × × (ऋग्वेद १०।१२९।७) अर्थात् सब जगह अन्धकार ही अन्धकार रहता है और प्रत्येक संभव आकाश (Space) प्रकृति के "अन्धकारमय स्वरूप से आच्छादित रहता है और कोई भी जगह, नाम मात्र को भी खाली नहीं रहती। प्रकृति के सूक्ष्म अवयवों में, उपर्युक्त भेद, उसी ईश्वर प्रदत्त गति से, जिस का ऊपर उल्लेख हो चुका है, हो जाता है। अब स्थूल भूतों की बात कही जाती है जिस का वर्णन उपनिषद् के इस अनुवाक में हुआ है। उपर्युक्त परिवर्तन विकृति रूप में परिवर्तित प्रकृति के अवयवों में भीतर ही भीतर,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी गति से होकर, उन अवयवों में यह योग्यता पैदा हो जाती है कि वह स्थूल भूतों को जन्म दे सकें। वही ईश्वर प्रदत्त गति अब इन प्रकृति के अवयवों (परमाणुओं) पर काम करती है और उन्हें धक्का देकर अपनी जगह छोड़ देने के लिये बाधित करती है। उन (अवयवों) तथा अन्यों के मध्य जिन पर भी उस गति ने काम किया है, कोई खाली जगह नहीं होती इसलिये वे सभी अवयव, अपने सामने वाले अवयवों को धक्का देने लगते हैं। जगह खाली न होने से, वे धक्का खाये हुये अवयव अपने अपने सामने के अवयवों को, बराबर धक्का देना शुरू कर देते हैं। इस प्रकार एक विश्वव्यापक हलचल, उन अवयव समूहों में पैदा हो जाती है। फल इस का यह होता है कि जो जो अवयव, इस संघर्षण से अपनी जगह छोड़ता जाता है उस से वहाँ वहाँ आकाश की उत्पत्ति होती जाती है। खाली जगह (Space) को आकाश (Ether) कभी खाली नहीं देता इसलिये वे सभी स्पेस (अवकाश) ईथर (आकाश) के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार पञ्चभूतों में से प्रथम भूत आकाश उत्पन्न हो जाया करता है।

(२) जहां आकाश हो और वायु के परमाणु भी, वहां उस आकाश को वायु के अणुरूप में हुये परमाणु आकर घेर लेते हैं। इस प्रकार वायु के अणुओं के एकत्र हो जाने और मिल जाने से वायु उत्पन्न हो जाया करता है।

(३) सूक्ष्मभूतों के रूप में परिवर्तित हुई विकृति के अवयव,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त गति से धक्के खाकर आलमगीर हल चल पैदा करके गोलाकार रेखाओं में घूमने लगते हैं। अब वायु के उत्पन्न हो जाने से, उनकी गति और भी वेगवती हो उठती है। उस वेगवती गति ने उन अवयवों में संघर्षण पैदा किया और इस संघर्षण (रगड़) से अग्नि पैदा हो जाया करती है।

नोट—यहां एक बात याद रखनी चाहिये कि असंख्य गोलाकार रेखाओं में घूमने वाले सूक्ष्मभूतों के अवयव, जहां वायु के उत्पन्न होने से वेगवती गति मय हो उठे थे, वे ही अब अग्नि के उत्पन्न हो जाने से, अग्नि मय हो कर चमकने लगते हैं। इन चमकने वाले गति मय समूहों का नाम ही वैदिक साहित्य में "विराट्" कहा जाता है। और इन्हीं के चमकदार कणों को अंगरेजी में नैवूला, (Nebular) कहते हैं। लायलास आदि योरुप के विद्वानों की आविष्कृत नैवूला थियोरी (Nebular Theory) यहीं से शुरू होती है। इससे पहले का इनको उस समय कुछ ज्ञान नहीं था।

(४) वायु और अग्नि के उत्पन्न हो जाने से, जल के निर्माता अवयव, औक्सीजन और हैड्रोजन (Oxygen & Hydrogen) अणुके रूप में व्यक्त होकर मिलते हैं और जल को वायवीय रूप में, (जैसे बादल, कुहरा आदि) उत्पन्न कर देते है।

(५) जल के उत्पन्न हो जाने से, उसके वायवीयकता, अन्य कणों से मिलते और उनमें नमी पैदा करते हैं जिससे अनेक अणु मिल कर ठोस हो कर पृथिवी को पैदा कर देते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) पृथिवी के उत्पन्न हो जाने से औषधि, औषधि से अन्न और उससे वीर्य्य (जिसमें रज शामिल समझना चाहिये) और वीर्य से पुरुष की उत्पति हुआ करती है। इस समस्त क्रम पर विचार करने से, गतिदाता ईश्वर के प्रदानित गति की विलक्षणता और अपूर्वता प्रकट होजाती है। यह सारा जगत् का जो खेल बन जाता है, यह सब उसी गति की करामात है। इसी लिए वेद में कहा गया है कि "वह (ईश्वर) गति देता है"। *अरस्तू ने भी उसे, गति में न आने वाला, गति दाता कहा है। †एक उर्दू के कवि ने भी, इस गति के सम्बन्ध में लिखा है:—

एक सौते ‡ सरमदी है जिस का इतना जोश है।
वरना हरज़र्रा अजल से ता अबद ख़ामोश है॥

अर्थात् प्रकृति का प्रत्येक कण प्रारम्भ से लेकर अन्त तक चुप रहने वाला (गति शून्य) है। यह संसार में जितना उत्साह मय कर्तृत्व दिखाई देता है वह एक दिव्य शब्द (दिव्य जाति) की ही करामात है। अस्तु; जब मनुष्य विधाता की, इस विलक्षण गति द्वारा, रचे गये, इस विलक्षण ब्रह्माण्ड पर, दृष्टि पात करता है तो वह नत मस्तक हो जाता है और विधाता के प्रति

---

* तदेजति। (यजुर्वेद ४०। ५

† Unmoral mover—God is morally the source of movement the first mover who himself is never moral (The Age of Aristotle P. 46)

‡ सौते सरमदी = "दिव्यशब्द" तात्पर्य्य दिव्य गति से है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका हृदय प्रेम, श्रद्धा और विश्वास से भर उठता है। इसी परिणाम पर पहुँचाने के लिये, उपनिषद्कार ने यहाँ सृष्टि उत्पत्ति का संकेत किया है।

(३) अन्न और रस से पुरुष के शरीर की उत्पत्ति होती है इसलिये उस (स्थूल) शरीर को अन्न रसमय (कोश) कहा गया है।

नोट—कोश और शरीरों का मिलान इस प्रकरण के अन्त में मिलेगा।

अथ द्वितीयोऽनुवाकः।

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। याः काश्च पृथिवीꣳ श्रिताः। अथोअन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपि यन्त्यन्ततः। अन्न ꣳ हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। सर्वं वैते ऽन्नमाप्नुवन्ति। ये ऽन्नं ब्रह्मोपासते। अन्न ꣳ हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। अन्नाद्भूतानि जायन्ते। जतान्यन्नेन वर्द्धन्ते। अद्यतेऽत्ति च भूतानि। तस्मादन्नं तदुच्यत इति। तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयादन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेनैष पूर्णः । स वा एव पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः । तस्य प्राण एव शिरः । व्यानो दक्षिणः पक्षः । अपान उत्तरः पक्षः । आकाश आत्मा । पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा तदप्येष श्लोको भवति ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ।

अर्थ—(याः, काः) जो कोई (च, पृथिवीम्, श्रिताः) पृथिवी पर रहते हैं (वै, अन्नात्, प्रजाः, प्रजायन्ते) निश्चय अन्न से (वे सब) प्राणी उत्पन्न होते हैं । (अथो, अन्नेन, एव, जीवन्ति) और अन्न ही से जीते हैं । (अथ, अन्ततः, एनत्, अपि, यन्ति) और अन्त को इसी में लीन हो जाते हैं । (अन्नम्, हि, भूतानाम्, ज्येष्ठम्) अन्न ही उत्पन्न पदार्थों में बड़ा है । (तस्मात्, सर्वौषधम्, उच्यते) इसलिये सर्वौषध कहा जाता है । (ये, अन्नम्, ब्रह्म, उपासते) जो अन्न को बड़ा जान कर सेवन करते हैं । (ते, वै) वे ही (सर्वम्, अन्नम्, आप्नुवन्ति) सब प्रकार के अन्न को प्राप्त होते हैं । (अन्नम्, हि, भूतानाम्, ज्येष्ठम्, तस्मात्, सर्वौषधम्, उच्यते) अन्न ही सब उत्पन्न पदार्थों में बड़ा है इसलिये सर्वौषध कहा जाता है । (अन्नात्, भूतानि, जायन्ते) अन्न से समस्त प्राणी जीते हैं । (जातानि, अन्नेन, वर्धन्ते) उत्पन्न हुए अन्न से बढ़ते है । (अद्यते, अत्ति, च, भूतानि) (प्राणियों से) खाया जाता है और प्राणियों को खा लेता है (तस्मात्, तत्, अन्नम्, उच्यते) इसलिये उसको अन्न कहते हैं ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तस्मात्, वा, एतस्मात्, अन्नरसमयात्) निश्चय उस इस अन्न रसमय (कोष) से (अन्तरः, प्राणमयः, आत्मा, अन्यः) भीतर प्राणमय आत्मा = कोष अन्य है। (तेन, एषः, पूर्णः) उस (प्राणमय कोष) से यह (अन्न रसमय कोष) पूर्ण है। (सः, वै, एषः, पुरुषविधः, एव) निश्चय वह यह (प्राण मय कोष) पुरुषाकार ही है। (तस्य, पुरुषविधतामनु) उस (प्राण रसमय कोष) के पुरुषाकार होने को सदृश (अयं, पुरुषविधः) यह (प्राणमय कोष भी) पुरुषाकार है। (तस्य, प्राण, एव, शिरः) उसका प्राण ही शिर है। (व्यानः, दक्षिणः, पक्षः) व्यान दाहना अङ्ग है। (अपानः, उत्तरः, पक्षः) अपान बायाँ अंग है। (आकाशः, आत्मा) आकाश धड़ है। (पृथिवी, पुच्छम्, प्रतिष्ठा) पृथिवी पूंछ (निकलने के स्थान) की तरह आश्रय स्थान (सहारा) है। (तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति) इस विषय में यह श्लोक भी है।

व्याख्या—इस अनुवाक में "अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्" आदि वाक्यों की द्विरावृत्ति, अन्न की श्रेष्ठता दिखलाने के लिये है। अनुवाक में पहले अन्नमय कोष से सम्बन्धित बातें कहते हुए, अन्न की महत्ता प्रदर्शित की गई है। उसके बाद प्राणमय कोष का उल्लेख किया गया है। अन्न शब्द अनेकार्थक है उसके अर्थ जहाँ खाद्य पदार्थों के हैं वहाँ ब्रह्म के भी हैं। जल अथवा पृथिवी को भी अन्न कहते हैं। यहाँ अन्न शब्द भोज्य पदार्थ और उनके कारण पृथिवी के लिये प्रयुक्त हुआ है। अन्नमय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोष (स्थूल शरीर) का वर्णन होने से, इस अनुवाक में भूतों का उत्पन्न होना, बढ़ना, खाना और फिर उसी में लीन हो जाना आदि सभी बातें मुख्य रीति से अन्नमय कोश के लिये ही हैं। स्थूल शरीर, पार्थिव पदार्थों ही से बनता, उसी से उन्नति करता और अन्त में उन्हीं में लीन भी हो जाता है।

(२) "पुरुषविध" शब्द, यहाँ कोषों के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसका भाव यह है कि जिस प्रकार "अन्नमय कोश" (स्थूल शरीर) अङ्गोपाङ्ग वाला है, इसी प्रकार, इसके भीतर, इसी आकार का प्राणमय कोश है, जो सूक्ष्म होने से अन्नमय कोश के भीतर रह सकता है। जिस प्रकार प्याज के छिलके, एक के बाद दूसरे, एक ही आकार प्रकार के होते हैं इसी तरह ये सभी कोश एक के भीतर दूसरे एक ही आकार के होते चले गये हैं। अन्तर केवल स्थूल और सूक्ष्म होने का है। अर्थात् भीतर वाले कोश बाहर वालों की अपेक्षा, बराबर सूक्ष्म होते चले गये हैं।

(३) पाँच में से केवल तीन प्राणों की बात, इस प्राणमय कोष के सम्बन्ध में इस अनुवाक में कही गई है। ये नाम केवल उपलक्षण के तौर पर लिये गये हैं। असल में प्राणमय कोश में सभी प्राणों का समावेश होता है।

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः

प्राणं देवा अनुप्राणन्ति मनुष्याः पशवश्च ये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणो हि भूतानामायुः तस्मात्सर्वायुषमुच्यते । सर्वमेव त आयुर्यन्ति । ये प्राणं ब्रह्मोपासते । प्राणोहि भूतानामायुः । तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य । तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयात् । अन्योन्तर आत्मा मनोमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः । तस्य यजुरेव शिरः । ऋग्दक्षिणः पक्षः । सामोत्तर- पक्षः । आदेश आत्मा । अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अर्थ—(ये, देवाः, मनुष्याः, पशवः, च, प्राणम्, अनुप्राणन्ति) जो देव (श्रेष्ठ मनुष्य) मनुष्य और पशु हैं (वे) प्राण के आश्रय से श्वास लेते (जीवित रहते) हैं। (प्राणः, हि, भूतानाम्, आयुः) प्राण ही प्राणियों की आयु है, (तस्मात्, सर्वायुषम्, उच्यते) इसलिये (प्राण को) सर्वायु कहते हैं। (ये, प्राणं, ब्रह्म, उपासते जो प्राण को बड़ा (जीवन का हेतु) समझ कर सेवन करते हैं। (ते, सर्वम्, एव, आयुः, यन्ति) वे पूर्ण आयु को प्राप्त होते हैं। (प्राणः, हि, भूतानाम्, आयुः, तस्मात् सर्वायुषम्, उच्यते, इति) निश्चय प्राण प्राणियों की आयु है इसी लिये उसे सर्वायु कहते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोट—इन अन्त के वाक्यों की द्विरावृत्ति प्राण की श्रेष्ठता दिखलाने के लिये है ।

(तस्य, एषः, एव, शारीरः, आत्मा, यः, पूर्वस्य) उस (प्राणमय कोश) का भी, शरीर में रहने वाला आत्मा, वही है जो पहिले (अन्नमय कोश) का था। (तस्मात्, वै, एतस्मात्, प्राणमयात्) निश्चय उस पूर्वोक्त प्राणमय कोश से। (अन्यः, अन्तरः, आत्मा, मनोमयः) भीतर दूसरा आत्मा (कोश) मनोमय है। (तेन, एषः, पूर्णः) उस (मनोमय कोश) से यह (प्राणमय कोश) पूर्ण है। (सः, वै, एषः, पुरुषविध, एव) वह (मनोमय कोश) भी पुरुषाकार ही है। (तस्य, पुरुषविधातम्, अनु) उस (प्राणमय कोश) के पुरुषाकार होने की तरह (अयम्, पुरुषविधः) यह (मनोमय कोश) पुरुषाकार है। (तस्य, यजुः, एव, शिरः) उस (मनोमय कोश) का यजुर्वेद शिर है। (ऋक्, दक्षिणः, पक्षः) ऋग्वेद दाहिना अंग है। (साम, उत्तरः, पक्षः) सामवेद बायां अंग है। (आदेशः, आत्मा) आदेश धड़ है। (अथर्वाङ्गिरसः, पुच्छम्, प्रतिष्ठा) अथर्व वेद पूंछ (निकलने के स्थान) की तरह आश्रय स्थान है। (तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति) इस विषय में यह श्लोक है।

व्याख्या—इस अनुवाक में प्राणियों की आयु के, श्वास पर निर्भर होने की, महत्त्व पूर्ण बात कही गई है। प्रारम्भ में यह बतलाते हुये कि सभी प्राणी, प्राण ही से जीवित रहते हैं, प्राण को, प्राणियों की आयु कहा गया है। और यह बात भी कही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई है कि जो व्यक्ति प्राण की इस महत्ता को समझकर, उसका, श्वास विज्ञानानुकूल पूर्ण श्वास किसे कहते है ? यह जानते हुये, सदुपयोग करते हैं, वे ही पुर्णायु का उपभोग करते हैं और जो नहीं करते उन्हें असमय ही संसार से चल देना पड़ता है।

(२) इस अनुवाक में एक जगह कहा गया है कि उस प्राण मय कोश का, शरीर में रहने वाला जो आत्मा है वही इस मनो मय कोश का भी है—इसका अभिप्राय यह है कि जीवात्मा के समझने में ग़लती नहीं करनी चाहिये। कोश चाहे पांच हो और कितने ही सूक्ष्म क्यों न हों परन्तु आत्मा (जीव) सब का एक ही है।

(३) मनोमय कोश को भी प्राणमय कोश की तरह, पुरुषाकार बतलाते हुये, यजुर्वेद को उसका शिर, ऋग्वेद और सामवेद को दायां बायां अंग और अथर्ववेद को उसका आश्रय स्थान बताया गया है।

यजुर्वेद में एक जगह मन के भीतर ऋक्, साम तथा यजुर्वेद तीनों प्रकार के मन्त्रों (अर्थात् चारों वेदों) के होने की बात कही गई है। * भाव इस सब का यह है कि ज्ञान संग्रह करने को साधन और उपलब्ध ज्ञान के सुरक्षित रखने का स्थान मन ही है। इसी लिये मनोमय कोष का सम्बन्ध वेदों से जोड़ा गया है।

इति तृतीयोऽनुवाकः।

---

* यस्मिन्नृचः साम यजूँ षि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
(यजुर्वेद ३४। ५

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ।

यतो वाचो निवर्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् । न बिभेति कदाचनेति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य । तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयात् । अन्योऽन्तर आत्माविज्ञान मयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः । तस्य श्रद्धैव शिरः । ऋतं दक्षिणः पक्षः । सत्यमुत्तरः पक्षः । योग आत्मा । महः पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ।

अर्थ—(मनसा, सह, वाचः,) मन के साथ वाणी (अप्राप्य) (ब्रह्म को) न प्राप्त करके (यतः, निवर्तन्ते) जहां से लौट आती है (उस) (ब्रह्मणः, आनन्दम्) ब्रह्म के आनन्द को (विद्वान्) जानने वाला (कदाचन, न, बिभेति, इति) कभी नहीं डरता । (तस्य, एषः, एव, शारीर, आत्मा, यः, पूर्वस्य) उस (मनोमय कोश) का शरीर में रहने वाला वही आत्मा है जो पहले (प्राणमय कोश) का था । (तस्मात्, वै, एतस्मात्, मनोमयात्) उस (पूर्वोक्त) इस मनोमय कोश से (अन्तरः, अन्यः, आत्मा, विज्ञानमयः) भीतर एक और आत्मा (कोश) विज्ञानमय है । (तेन, एषः, पूर्णः) उस (विज्ञानमय कोश) से यह (मनोमय)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोश) पूर्ण है। (सः, वै, एषः, पुरुष विधः, एव) निश्चय वह यह (विज्ञानमय कोश) भी पुरुषाकार है। (तस्य, पुरुष विधताम्, अनु) उस (मनोमय कोश) के पुरुषाकृति के अनुकूल (अयम्, पुरुषविधः) यह (विज्ञानमय कोश) भी पुरुषाकार है। (तस्य, श्रद्धा, एव, शिरः) उस (विज्ञानमय कोश) का श्रद्धा ही शिर है। (ऋतम्, दक्षिणः, पक्षः) ऋत (तीनों काल में एक जैसे रहने वाले वेद नियम) दाहिना अंग है। (सत्यम्, उत्तरः, पक्षः) सचाई बायां अङ्ग है। (योगः, आत्मा) चित्त का समाधान रूपी योग (उसका) धड़ है। (महः, पुच्छम्, प्रतिष्ठा) महः (महत्तत्त्व=समष्टि बुद्धि तत्त्व) पूँछ (निकलने के स्थान) की सदृश आश्रय स्थान है। (तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति) इस पर यह (अगला) श्लोक भी है।

व्याख्या—इस अनुवाक में पहले यह शिक्षा दी गई है कि मन और इन्द्रियां (वाणी का नाम केवल उपलक्षण के तौर पर लिया गया है।) ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकतीं, क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय नहीं है। इन्द्रियाँ बहिर्मुखी होती हैं इसलिये जब इनके मार्ग का अनुसरण करना छोड़कर, उपासक अन्तर्मुखी होकर ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब वह निर्भीक हो जाता है।

(२) उसके बाद चौथे कोश का विवरण दिया गया है।

(१) मनोमय कोश का भी आत्मा वही है जो पहले प्राणमय का था।

CC-0.Pānini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) मनोमय कोश के भीतर, उसी प्रकार विज्ञानमय कोश है, जिस प्रकार प्राणमय कोश के भीतर मनोमय कोश।

(३) विज्ञानमय कोश से मनोमय कोश भरपूर है।

(४) मनोमय कोश की तरह यह, (विज्ञानमय) कोश भी पुरुषाकार है।

(५) इस विज्ञानमय कोश का शिर श्रद्धा, ऋत दायां और सत्य बायां पक्ष, योग, धड़ और बुद्धितत्त्व आश्रय स्थान है।

इति चतुर्थोऽनुवाकः।

अथ पञ्चमोऽनुवाकः।

विज्ञानं यज्ञं तनुते। कर्माणी तनुतेऽपि च। विज्ञानं देवाः सर्वे। ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते। विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद। तस्मा-च्चेन्न प्रमाद्यति। शरीरे पाप्मनो हित्वा। सर्वान् कामान्। समश्नुत इति। तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य। तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात्। अन्योऽन्तर आत्माऽऽनन्द मयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य-पुरुषविधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्रियमेव शिरः। मोदो दक्षिणः पक्षः। प्रमोद उत्तरः पक्ष। आनन्द आत्मा। ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति।

इति पञ्चमोऽनुवाकः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—(विज्ञानम्, यज्ञम्, तनुते) विशेष ज्ञान यज्ञ को फैलाता है। (कर्माणि, अपि, तनुते, च) और कर्म को भी विस्तार देता है। (सर्वे, देवाः, ब्रह्मज्येष्ठम्, विज्ञानम्, उपासते) सभी विद्वान् महान ब्रह्म की (प्राप्ति के लिये) विज्ञान का सेवन करते हैं। (विज्ञानम्, ब्रह्म, चेत्, वेद) यदि कोई विज्ञान रूपी ब्रह्म (तत्त्व) को जान लेता है। (तस्मात्, चेत्, न, प्रमाद्यति) और यदि उससे प्रमाद नहीं करता अर्थात् उसे भुलाता नहीं तो (शारीरे, पाप्मनः, हित्वा) शरीर में पापों को छोड़कर (सर्वान्, कामान्, समश्नुते, इति) समस्त कामनाओं को प्राप्त हो जाता है। (तस्य, एषः, एव, शारीरः, आत्मा, यः, पूर्वस्य) उस (विज्ञान मय कोश) का शरीर में रहने वाला यही आत्मा है जो पहले (मनोमय कोश) का था। (तस्मात्, वै, एतस्मात्, विज्ञानमयात्) निश्चय पूर्वोक्त इस विज्ञान मय कोश से (अन्तरः, अन्यः, आत्मा, आनन्दमयः) भीतर एक और आत्मा=कोश आनन्दमय है (तेन, एषः, पूर्णः) उस (आनन्दमय कोश) से यह (विज्ञानमय कोश) पूर्ण है। (सः, वै, एषः, पुरुषविधः, एव) वही यह (आनन्दमय कोश) पुरुषाकार ही है। (तस्य, पुरुषविधताम्, अनु, अयम्, पुरुषविधः) उस (विज्ञानमय कोश) के पुरुषाकार होने की सदृश, यह (आनन्दमय कोश) भी पुरुषाकृतिवाला है। (तस्य, प्रियम्, एव, शिरः) उसका प्रेम ही शिर है। (मोदः, दक्षिणः, पक्षः) हर्ष (उसका) दायां अंग है। (प्रमोदः, उत्तरः, पक्षः) और विशेष हर्ष बायां अंग है। (आनन्दः, आत्मा) आनन्द

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका धड़ है। (ब्रह्म, पुच्छम्, प्रतिष्ठा) और ब्रह्म पूंछ (निकलने का स्थान) रूपी आश्रय स्थान है। (तत् अपि, एषः, श्लोकः, भवति) उसी पर यह अगला श्लोक है।

व्याख्या—इसमें प्रथम विज्ञान की, इस प्रकार प्रशंसा की है:—

(१) विज्ञान से समस्त यज्ञों और उत्तम कर्मों का विस्तार होता है।

(२) सभी विद्वान, ब्रह्म प्राप्ति के लिये, विज्ञान को प्रयोग में लाया करते हैं।

(३) जब कोई विद्वान् विज्ञान तत्त्व को जान लेता है और उसके प्रयोग में आलस्य नहीं करता तो उससे पाप छूट जाते हैं और उसको समस्त कामनायें पूरी हो जाती हैं। अब इसके बाद अन्तिम कोश का विवरण दिया गया है।

(४) इस विज्ञानमय कोश का आत्मा वही है जो मनोमय का था।

(५) इस विज्ञानमय कोश के भीतर एक और सूक्ष्म आनन्द-मय कोश है जिससे यह (विज्ञानमय कोश) परिपूर्ण है।

(६) यह आनन्दमय कोश भी, विज्ञानमय, की सदृश, पुरुषाकार है।

(७) इसका शिर प्रेम, दायाँ तथा बायाँ अंग मोद और प्रमोद, आनन्द धड़ और ब्रह्म इसका आश्रय स्थान है।

इस प्रकार उपनिषद्कार ने यहाँ पंच कोशों का विवरण देते हुये इस अनुवाक को समाप्त किया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह ब्रह्मानन्दवल्ली है। कोशों का इस ब्रह्मानन्द से क्या सम्बन्ध है ? स्थूल शरीर आदि के भेद स्वतन्त्र हैं अथवा उनका इन कोशों से कुछ सम्बन्ध है ? इन प्रश्नों पर कुछ प्रकाश पड़ने की जरूरत है। इसी उद्देश्य से पंच कोशों के सम्बन्ध में आवश्यक बातें यहाँ अंकित की जाती हैं:—

पञ्च कोश

यहां पञ्च कोशों के सम्बन्ध में जो बातें लिखी गई हैं—पहले हम उन्हों का उल्लेख करते हैं; उनके समझे बिना यह विषय सुगमता से समझ में नहीं आ सकेगा।

नीचे के चित्र को देखें:—

सं.	नामकोश	कोश का शिर	दक्षिण पक्ष	उत्तर पक्ष	धड़	आश्रय स्थान	विशेष
१.	अन्नमय कोश	दिखाईदेने वाला शिर	दाहना बाजू	बायां बाजू	मध्य शरीर	गुदा का ऊपरी भाग	स्थूल शरीर
२.	प्राणमय कोश	प्राण	व्यान	अपान	आकाश	पृथिवी	
३.	मनोमय कोश	यजुर्वेद	ऋग्वेद	सामवेद	आदेश	अथर्ववेद	सूक्ष्म शरीर
४.	विज्ञान मय कोश	श्रद्धा	ऋत	सत्य	योग	महत्तत्त्व	
५.	आनन्द मय कोश	प्रेम°	मोद	प्रमोद°	आनन्द	ब्रह्म	कारण शरीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन कोशों के सम्बन्ध में ये बातें भी ध्यान में रखने योग्य हैं:—

(१) क्रमपूर्वक एक कोश दूसरे के भीतर है अर्थात् अन्नमय के भीतर प्राणमय उसके भीतर विज्ञानमय इत्यादि।

(२) प्रत्येक भीतरी कोश अपने समीपवर्त्ती बाहरी कोश में फैला हुआ है।

(३) प्रत्येक कोश पुरुष शरीराकार है।

ये सब विवरण कोशों का वही है जो उपनिषद्कार ने दिया है।

"पंच कोशों पर विचार"

(१) उपर्युक्त चित्र पर विचार करने से यह बात साफ़ तौर से प्रगट हो रही है कि इन कोशों का क्रम, बाहर से भीतर चलने की ओर, है।

इन में से प्रथम के ३, अन्नमय, प्राणमय, और मनोमय कोश, वे हैं जिन का बाहरी और भीतरी इन्द्रियों से सम्बन्ध है। इसीलिये इनके सम्बन्ध में, उपनिषद्कार ने, स्पष्ट रीति से, लिख दिया है कि इन के द्वारा ब्रह्म प्राप्त होने के योग नहीं है, किन्तु उन्हों ने कहा है कि जब ये समस्त इन्द्रियाँ मन के साथ, ब्रह्म को प्राप्त न कर के स्थान विशेष से लौट आती हैं तब विज्ञान मय कोष द्वारा, उपासक ब्रह्म की ओर चला करता है। वह स्थान विशेष जहाँ तक इन्द्रियों की पहुँच है, वह है जहाँ मनोमय कोश की सीमा समाप्त होती है, उसके आगे मन और इन्द्रियों की गति (पहुँच) नहीं है। यहाँ एक बात याद रखने के योग्य है कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि उपर्युक्त तीनों कोश ब्रह्म प्राप्ति के साक्षात कारण नहीं हैं परन्तु असाक्षात कारण अवश्य हैं क्योंकि इन के बाहर से हट कर भीतर की ओर चलने की प्रवृत्ति ही के कारण, उपासक की पहुँच विज्ञानमय कोश में होती है।

विज्ञानमय कोश, अन्तःकरणों की बाहरी और भीतरी वृत्तियों का सन्धि स्थान (Jimotion) है। उस के बाहर की ओर होने से मन और इन्द्रियों के साम्राज्य में प्रवेश होता है और उस के भीतर की ओर चलने से आत्म जगत् का प्रकाश दृष्टिगोचर होने लगता है।

(२) इन कोशों के सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि किन किन योग्यताओं के प्राप्त होने से, उपासक इन कोशों की दुनियाँ में प्रविष्ट होकर बराबर आगे बढ़ता चला जाता है। उन्हीं का यहाँ विवरण देना है:—

पहली योग्यता—पहले कोश का विवरण देते हुये, उपनिषद् में मनुष्य को "अन्नरसमय" लिखा है। इस का तात्पर्य यह है कि अन्नमय होकर उसे पुष्ट और निरोग शरीर वाला होना चाहिये; और रसमय होकर वीर्य्यवान और ओजस्वी होना चाहिये। इन दोनों गुणों के एकत्र हो जाने से मनुष्य, मनुष्य कहे जाने के योग्य हुआ करता है।

दूसरी योग्यता—अब उसे प्राणमय होना चाहिये। इस प्राणमय होने का अर्थ यह है कि प्राणायाम आदि के द्वारा उसके प्राण पुष्ट और ऐसे होने चाहिये कि प्रत्येक प्राण, अपने अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकारक्षेत्र में रहते हुये, अपने अपने कर्व्यों को उत्तम रीति से करे। प्राणों के पुष्ट और प्रभावशाली होने से, मनुष्य के भीतर निष्काम होकर कर्म करने की योग्यता आजाया करती है।

तीसरी योग्यता—उपर्युक्त दोनों योग्यताओं के प्राप्त करने के बाद अब मनुष्य को ज्ञानोपार्जन करना चाहिये। इसीलिये मनोमय कोश के अङ्ग चारों वेद कहे गये हैं। चारों वेदों के साथ "आदेश" को इस (मनोमय) कोश का धड़ बतलाया गया है। आदेश—आज्ञा, उपदेश, शिक्षा, शासन और नियम को कहते हैं, यहाँ अन्त के दो अर्थों का लेना ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है। अर्थात् ज्ञानोपलब्धि के साथ ही उपासक को, आत्म शासक और नियम तथा मर्यादा के भीतर रहने वाला होना चाहिये।

चौथी योग्यता—अब उपासक को बाह्य जगत् से, अपना सम्बन्ध कम कर के, भीतर की (आत्मा) दुनियाँ में चलना है इसलिये अब उसी के अनुरूप उसे बनना चाहिये। आत्म जगत् के अनुरूप बनने के लिये पांच बातों की जरूरत है और यही पाँच बातें विज्ञानमय कोश के अङ्गोपांग हैं:—

(१) श्रद्धा—सृष्टि की उत्पत्ति का वित्तरण इसी (श्रद्धा) की प्राप्ति के लिये ऊपर दिया जा चुका है। जब उपासक, ईश्वर के इस असीम जगत् और उस की अभूतपूर्व रचना को देखता और उस पर विचार करता है तब उस का हृदय, उस महान् प्रभु के प्रेम और श्रद्धा से भरपूर हो उठता है।

(२) ऋत—वेदों में वर्णित, ईश्वर प्राप्ति के नियमों की जान-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारी और उनके अनुकूल आचरण करना, ऋत का अभिप्राय है।

(३) सत्य—मन, वाणी और आचरण में समता का भाव सदैव बनाये रखना, सत्य का आचार=सदाचार है।

(४) योग—चित्त की बाहर जाने वाली वृत्तियों का निरोध, जिससे आत्मा अन्मुंखी होकर आत्म-चिन्तन और परमात्मा-चिन्तन में लीन हो।

(५) महत्तत्त्व—समष्टि बुद्धितत्त्व उस (उपासक) का आश्रय स्थान होना चाहिये। इसका अभिप्राय यह है कि उसे निरहंकार होकर अहंकार (ममता) की दुनियाँ से ऊपर हो जाना चाहिए।

इन योग्यताओं के प्राप्त कर लेने पर उपासक अन्तिम (आनन्दमय) कोश में प्रवेश करने का अधिकारी बना करता है।

पांचवीं योग्यता—विज्ञानमय कोश से सम्बन्धित योग्यताओं के प्राप्त कर लेने पर, उपासक प्रेम के मन्दिर का पुजारी बन जाता है। अतः वह प्रेमयय और प्रेम की मूर्ति बन चुका है। इधर उधर कहीं कोई भी नहीं जो उसका प्रेमोपहार न प्राप्त कर चुका हो। इस प्रकार प्रेम के मन्दिर में प्रविष्ट होकर, मोद, प्रमोद और अन्त में (आत्मा के ! आनन्द में उपासक मग्न हो जाता है। अब उसका प्रियतम ही उसका आश्रय स्थान है और इधर उधर सभी ओर वह उसे देखता और उसी के प्रेम और भक्ति में लवलीन हो रहा है।

यही मनुष्य जीवन का धर्मोद्देश्य और यही आत्मा की अन्तिम गति है। यहाँ पहुँच कर उपासक व्यास के शब्दों में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह उठता है "प्राप्तं प्राप्तव्यं"। अर्थात् जो प्राप्त होने योग्य था प्राप्त हो गया।

(३) अस्तु, इन कोशों की बात समाप्त करते हुए अन्त में यह प्रकट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है, जैसा चित्रके "विशेष" को कालम में लिखा गया है, इन पांच कोशों का क्रम तीनों शरीरों से भिन्न नहीं है। अन्नमय कोश, स्थूल शरीर स्थानी, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय तीनों कोश मिलकर सूक्ष्म शरीर स्थानी और अन्तिम आनन्दमय कोश, अन्तिम कारण शरीर स्थानी है।

इति पञ्चमोऽनुवाकः।

अथ षष्ठोऽनुवाकः।

असन्नेव स भवति। असद् ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति। तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य। अथातोऽनुप्रश्नाः। उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य, कश्चन गच्छति ३। आहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य। कश्चित्समश्नुता ३ उ। सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदꣳ सर्वमसृजत। यदिदं किञ्च। तत्सृष्ट्वा। तदेवानुप्राविशत्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनुप्रविश्य । सच्च त्यच्चाऽभवत् । निरुक्तञ्चानिरुक्तञ्च । निलयनञ्चानिलयनञ्च । विज्ञानञ्चाविज्ञानञ्च । सत्यञ्चानृतञ्च । सत्यमभवत् । यदिदंकिञ्च । तत्सत्यमित्याचक्षते । तदप्येष श्लोको भवति ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ।

अर्थ—(असत्, ब्रह्म, इति, चेत्, वेद) ब्रह्म असत है, ऐसा जो जानता है, (सः, असत्, एव, भवति) वही असत् होता है, (ब्रह्म, अस्ति, इति, चेत्, वेद) ब्रह्म है, ऐसा जो जानता है, (ततः, एनम्, सन्तम्, इति, विदुः) तब उसको (लोग) सन्त है, ऐसा जानते हैं । (तस्य, एषः एव, शारीर, आत्मा, यः, पूर्वस्य) उस (आनन्दमय कोश) का यही शरीर में रहने वाला आत्मा है जो पहले (विज्ञानमय कोश) का था । (अथ, अतः, अनुप्रश्नाः) अब इससे आगे ये प्रश्न हैं । (उत, कश्चन,अविद्वान्, प्रेत्य, अमुम्, लोकम्, गच्छति) क्या कोई अविद्वान् (ब्रह्म को न जानने वाला) मरकर उस (आनन्दमय=ब्रह्म) लोक को जाता है ? (आहो, कश्चित्, विद्वान्, प्रेत्य, अमुम्, लोकम्, समश्नुते) अथवा कोई ब्रह्मज्ञ मरकर उस लोक को प्राप्त करता है ? (सः, अकाममत्) उस (ब्रह्म) ने इच्छा की कि (बहु, स्याम्, प्रजायेय, इति) मैं बहुत हो जाऊं और प्रजा वाला हो जाऊं (सः, तपः, अतप्यत्) उसने तप तपा । (सः, तपः, तप्त्वा इदम् सर्वम्, असृजते) उसने तप तप कर इस सब को उत्पन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। (यत्, इदम्, किम्, च) जो कुछ यह (जगत्) है। (तत्, सृष्ट्वा, तत्, एव, अनुप्राविशत्) उस (समस्त जगत्) को पैदा करके वह (ईश्वर) उस में अनुप्रविष्ट हुआ। (तत्, अनुप्रविश्य, सत्, च, त्यत्, च, अभवत्) उसमें प्रविष्ट हो कर (वह ब्रह्म) व्यक्त और अव्यक्त हुआ। (निरुक्तम्, च, अनिरुक्तम् च,) निर्वचनीय और अनिर्वचनीय हुआ। (निलयनम्, च, अनिलयनम्, च) आधारवान और निराधार। (विज्ञानम्, च, अविज्ञानम्, च) चेतन और जड़। (सत्यम् च, अनृतम्, च) सत्य और असत्य अर्थात कारण और कार्य्य। (सत्यम्, अभवत्) सत्य हुआ। (यत् इदम्, किम्, च) जो कुछ यह है। (तत्, सत्यम्, इति, आचक्षते) वह सत्य है, ऐसा कहा जाता है। (तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति) इस विषय में यह श्लोक भी है॥

व्याख्या—इस अनुवाक का पहला भाग जो ब्रह्म की सत्ता से सम्बन्ध रखता है, पहले अनुवाक से सम्बन्धित है। इससे पहले (पाँचवें अनुवाक में) आनन्दमय कोश का विवरण देते हुये उसकी पुष्टि में यह श्लोक (अर्थात् इस अनुवाक का पहला भाग) है। तात्पर्य्य यह है कि उस आनन्दमय ब्रह्मको जानने ही से मनुष्य श्रेष्ठ बना करता है परन्तु जो असत् कहते अर्थात् उसकी सत्ता से इन्कारी हैं, उनके लिये उपनिषद् में यहाँ कहा गया है कि वे स्वयं असत् अर्थात् विश्वास करने के सर्वथा अयोग्य हैं।

(२) दूसरी बात जो इस अनुवाक में कही गई है, वह वही है जो पिछले अनुवाकों में बराबर कही जाती चली आरही है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात इस आनन्दमय कोश के भीतर रहने वाला जीवात्मा वही है जो विज्ञानमय कोश का था। अर्थात समस्त पाँचों कोश शरीर में रहने वाले उसी एक जीवात्मा के आधीन रहते हुये अपना अपना काम करते हैं।

(३) इस अनुवाक में प्रश्न रूप में तीसरी शिक्षा दी गई है, दो प्रश्न किये गये हैं:—

(१) क्या कोई अविद्वान् मरकर उस आनन्दमय लोक को जाता है ?

(२) अथवा क्या कोई ब्रह्मज्ञ मरकर उस (आनन्दमय) लोक को जाता है।

इन प्रश्नों का उत्तर, इन प्रश्नों के ठीक बाद यद्यपि नहीं दिया गया है परन्तु वास्तव में इससे पहले अनुवाकों में साफ़ साफ़ उत्तर दिया जा चुका है। इससे पहले (पाँचवें) अनुवाक में कहा गया है कि "यदि कोई विज्ञान रूपी ब्रह्म (तत्त्व) को जान लेता है और उस से प्रमाद नहीं करता तो समस्त पापों को शरीर ही में छोड़कर समस्त कामनाओं (मोक्ष=ब्रह्म प्राप्ति पर्यन्त) को प्राप्त कर लेता है। इससे स्पष्ट रीति से पहले प्रश्न का उत्तर निषेध परक और दूसरे प्रश्न का उत्तर हां में दिया जासकता है। इन प्रश्नों के यहाँ लिखने का अभिप्राय केवल यह प्रतीत होता है कि प्रत्येक पाठक को अपने हृदय से यही दोनों प्रश्न करके, उनके उत्तर, अपने लिये लेने चाहिये। ऐसा करने से, उन्हें उत्तर वही मिलेगा जो दिया जा चुका है तब स्वाभाविक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीति से उनके हृदयों में, उस ब्रह्म के जानने की इच्छा पैदा होगी उसी इच्छा की पूर्ति के लिये अन्त की बात, इस अनुवाक में, कही गई है।

(४) ईश्वर के जानने का, सर्वश्रेष्ठ साधन, उसका रचा हुआ जगत् है इस लिये जगत् रचना के सम्बन्ध में जो बातें उपनिषद् में इससे पहले कही गई है, यहाँ उनसे पहले की बात कहते हैं। यहाँ जो बात कही गई है, उनका विवरण इस प्रकार हैं:—

पहली बात—ईश्वर ने इच्छा की कि मैं बहुत और प्रजावाला होजाऊं। बहुत होने का अर्थ यह नहीं है कि अनेक ईश्वर हो जावें किंतु जगत् के पदार्थों के कारण में व्यापक होते हुये भी। उन पदार्थों के बन जाने पर ईश्वर उनमें अनुप्रविष्ट हुआ करता है। जैसे मनुष्य का प्राकृतिक शरीर और आत्मा इन दोनों में ईश्वर पृथक् पृथक् रहा करता है और अब मनुष्य के शरीर और आत्मा के मिलकर उत्पन्न होने पर भी ईश्वर उसमें प्रविष्ट हुआ इसलिये उसे अनुप्रविष्ट कहते हैं। ईश्वर इस प्रकार प्रत्येक वस्तु में अनुप्रविष्ट और तद्रूप होकर, घटाकाश मठाकाशवत्, उस वस्तु के प्रतिरूप समझा जाने से, बहुत कहा जाने लगता है परन्तु वास्तव मे वह रहता सदैव एक ही है। जैसा एक जगह उपनिषद् में कहा गया है कि "जिस प्रकार अग्नि या वायु एक भूत होने पर, वस्तुओं में प्रविष्ट होकर, तद्रूप हो जाया करते हैं, इसी प्रकार, वह सर्वभूतान्तरात्मा एक होने पर भी सबमें प्रविष्ट होकर,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक वस्तु के प्रतिरूप हो जाया करता है परन्तु रहता सदैव उन वस्तुओं से पृथक् ही है।"*

इस प्रकार असंख्य वस्तुओं में प्रविष्ट (व्यापक) होकर वह (ईश्वर) शब्द मात्र से बहुत कहा जाया करता है परन्तु इस से, उसके एकत्व अथवा सबसे पृथक्त्व में, बाधा नहीं पहुंचती—यही उसका बहुत हो जाना अथवा बहुत प्रजा वाला हो जाना है।

दूसरी बात—उस (ईश्वर) ने बहुत और प्रजा वाला (प्रजापति) हो जाने के लिये, तप तपा अर्थात् ईक्षण किया जिसका सविस्तार वर्णन, इसी वल्ली के प्रथमानुवाक में हो चुका है। उस (ईक्षण) के करने से यह समस्त ब्रह्माण्ड, जैसा कि कहा जा चुका है, उत्पन्न हो गया। और वह (ईश्वर) उपर्युक्त भांति उन सब में अनुप्रविष्ट हुआ।

तीसरी बात—अनुप्रविष्ट होकर वह जगत् में निम्न भाँति प्रकट हुआ:—

(१) सत्=व्यक्त और असत्=अव्यक्त रूप में।
(२) निरुक्त=निर्वचनीय और अनिरुक्त=अनिर्वचनीय।
(३) निलयन=आश्रयवान और अनिलयन=निराश्रित।

---

* अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥
वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥
(कठोपनिषद् २।२।१०)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) विज्ञान=चेतन और अविज्ञान=जड़।

(५) सत्य=कारण और अनृत=कार्य्य।

संसार में जितनी चीजें हैं, वे सब उपर्युक्त द्वंद्व रूपों ही में हैं। कुछ वस्तुयें ऐसी हैं कि वे व्यक्त हैं जैसे अग्नि, जल और पृथिवी आदि परन्तु कुछ ऐसी हैं जो अव्यक्त हैं, जैसे आकाश और वायु इत्यादि।

(२) कुछ ऐसी हैं जिनका मनुष्य निर्वचन कर सकते हैं जैसे स्थूलभूत परन्तु कुछ ऐसी हैं जिनका, स्थूल भूतों की भांति, निर्वचन नहीं किया जा सकता जैसे सूक्ष्म भूत।

(३) कुछ ऐसी हैं जिनकी स्थिति, अन्यों के आश्रय से है जैसे वृक्षादि पृथिवी का और पृथिवी आदि सूर्य्य का आश्रय रखते हैं और कुछ ऐसी हैं जो पृथिवी आदि की भांति अपना आश्रय नहीं रखते जैसे सूर्य्य आदि।

(४) कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो चेतन हैं और कुछ ऐसे हैं जो जड़ हैं।

(५) कुछ वस्तुयें कारण रूप में और कुछ कार्य्य रूप में हैं।

ईश्वर इन सभी द्वन्द्वों में व्यापक है और व्यापकत्व से तद्रूप और तदाकार भी है जैसा कहा जा चुका है। इसीलिये कहा गया है कि वह ब्रह्माण्ड में इन सब रूपों में प्रकट हुआ। जैसे, जैसा कि कहा जा चुका है, एक लोहे को खूब गरम करके अग्नि-मय (लाल) करलें तो उसे लोहा भी कह सकते हैं क्योंकि वह लोहे का बना हुआ है और अग्नि भी कह सकते हैं क्योंकि वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निमय है और निकट पहुँच जाने से किसी भी वस्तु को जला भी सकता है। इसी प्रकार जगत् में उत्पन्न सूर्य्य चन्द्र आदि यद्यपि प्राकृतिक हैं और इनका उपादान कारण प्रकृति है परन्तु ईश्वर उपादान कारण और कार्य्य से पृथक् होते हुए इनमें व्यापक है इसलिये व्यापकत्व के नाते से यह भी कहा जा सकता है कि ईश्वर इन रूपों में प्रकट हो रहा है।

चौथी बात—जो कुछ यह ब्रह्माण्ड है, जिसका ऊपर उल्लेख हुआ, वह सत्य है और इसीलिये उसे सत्य कहते हैं। सत्य का निर्वचन इस प्रकार किया जाता है:—"सच्च त्यच्चास्यभिन्नि-ति सत्यम्।" अर्थात् सत् और त्यत् (सत्+त्यत्) मिलकर सत्य होता है। ईश्वर भी सत्य है क्योंकि उसमें सभी व्यक्त और अव्यक्त पदार्थ विद्यमान रहते हैं और वह स्वयं भी योगी और उपासकों के लिये व्यक्त (प्रगट) और अन्यों के लिये अव्यक्त (अप्रकट) रहा करता है और जगत् भी सत्य है क्योंकि वह भी व्यक्त और अव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है।

इति षष्ठोऽनुवाकः।

अथ सप्तमोनुवाकः

असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो व सदजायत। तदा-त्मानꣳस्वयमकुरुत। तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति। यद्वै तत्सुकृतम्। रसो वै सः। रसꣳह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

तिथी.....
पुस्तक.....
भारती पुस्तकालय
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवति। को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात्। यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् एष ह्येवानन्दयाति। यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते। अथ सोऽभयं गतो भवति। यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति। तत्त्वेव भयं विदुषोऽमन्वानस्य। तदप्येष श्लोको भवति॥

इति सप्तोऽनुवाकः।

अर्थ—(असत्, वै, इदम्, अग्रे, आसीत्) निश्चय पहले यह असत् था। (ततः, वै, सत्, अजायत) उस से ही सत् उत्पन्न हुआ। (तत्, आत्मानम्, स्वयम्, अकुरु) उसने अपने को स्वयं बनाया। (तस्मात्, तत्, सुकृतम्, इति, उच्यते) इसलिये वह सुकृत ऐसा कहा जाता है। (यत्, वै, तत्, सुकृतम्) निश्चय जो वह सुकृत है। (रसः, वै, सः) वही रस है। (रसम्, हि एव, अयम्, लब्ध्वा, आनन्दी, भवति) रसही को यह पाकर सुखी होता है। (यत्, एषः, आकाशः, आनन्दः, न स्यात्) जो यह आनन्द रूप आकाश (परमात्मा) न होता (तो) (कः, हि, एव, अन्यात्, कः प्राण्यात्) कौन जी सकता, कौन श्वास ले सकता। (एषः, हि, एव, आनन्दयाति) यही आनन्द देता है। (यदा, हि, एव, एषः, एतस्मिन्, अदृश्ये, अनात्म्ये, अनिरुक्ते, अनिलयने, अभयम्, प्रतिष्ठाम्, विन्दते) निश्चय जभी यह (जीव) इस अदृश्य, निराकार, अनिर्वचनीय, निराधार, (परमात्मा में) अभय प्रतिष्ठा (निर्भीकता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मय स्थिति) प्राप्त कर लेता है। (अथ, सः, अभयंगतः, भवति) तब वह निर्भीक होजाता है। (यदा, हि, एव, एषः, एतस्मिन्, उत्, अज्म्, अन्तरम्, कुरुते) और जब यह इस में जरा सा भी अन्तर करता है। (अथ, तस्य, भयम्, भवति) तब उसको भय होता है। (अमन्वानस्य, विदुषः, तत्, तु, एव, भयम्) ब्रह्मज्ञान रहित विद्वान् ही को वह भय होता है। तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति) इस पर यह श्लोक भी है।

व्याख्या—जगत् की उत्पत्ति से पहले कारण रूप प्रकृति अव्यक्त और अप्रसिद्ध अवस्था में थी, इसीलिये उसे यहां असत् कहा गया है। ब्रह्माण्ड के अभाव होने की वजह से ईश्वर भी अव्यक्त और अप्रसिद्ध ही था इसलिये वह भी असत् रूप में ही था। जगत् की उत्पत्ति होने से जहाँ एक ओर अव्यक्त प्रकृति, कारण से कार्य्य अवस्था में आने से, व्यक्त और प्रसिद्ध हुई वहाँ दूसरी ओर ईश्वर भी, जगत् रचयिता के रूप में, रचना गुण के प्रत्यक्ष होने से, व्यक्त और प्रसिद्ध हुआ क्योंकि प्रत्यक्ष गुणी का नहीं अपितु गुण ही का हुआ करता है और गुण ही के प्रत्यक्ष होने से गुणी भी प्रत्यक्ष समझा और माना जाया करता है। यही जगत् के प्रारम्भ होने से पहले असत् का होना और उससे सत् का उत्पन्न होजाना है। ईश्वर, कहा जा चुका है कि ब्रह्माण्डांतर्गत वस्तुओं के उत्पन्न होने पर, अपने सर्वव्यापकत्व से, प्रत्येक वस्तु में, उसके प्रतिरूप होकर, अनुप्रविष्ट हुआ करता है। यही उसका अपने को बनाना अर्थात् प्रकट करना है। स्वयंभू होने से,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर, इस प्रकार स्वयं अपने को बनाना अर्थात् प्रकट करता है इसलिये उसका नाम "सुकृतम्" है। सुकृतम् के अर्थ हैं अच्छा बना और सुकृत् अच्छा बनाने वाले को, कहते हैं। विभक्ति व्यत्यय मान लेने से जैसा आर्य ग्रन्थों में, अवेष्ट जगत् माना जाता है, सुकृतम् के अर्थ भी, अच्छा बनाने वाला हो जाते हैं। जगत् के अच्छे बने हुये होने में, कौन सन्देह कर सकता है? इसलिये ईश्वर जगत् का, अच्छा बनाने वाला, उचित रीति से कहा, जा सकता है।

(२) अब उसी जगत् के अच्छा बनाने वाले (सुकृतम्) के लिये कहा गया है कि वही रस अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड का सार है और उसी के प्राप्त कर लेने से, मनुष्य आनन्द प्राप्त किया करता है। ईश्वर को, उसके व्यापकत्व के कारण, आकाश कहते हैं। इसीलिये यहाँ कहा गया है कि यदि वह आनन्दरूप ब्रह्म (आकाश) न होता तो संसार में कौन जी सकता और कौन श्वास ले सकता था अर्थात् समस्त जगत् का व्यापार, उसी (ईश्वर) की प्रदानित गति ही से हो रहा है। यदि वह जड़ प्रकृति में गति का संचार न करता तो जगत् का व्यापार तो अलग रहा, स्वयं जगत् भी नहीं बन सकता था; अस्तु समस्त जगत् का व्यापार, जगत् में उसके व्यापकत्व ही से हुआ करता है और वही, अधिकारी मनुष्यों को, आनन्द भी दिया करता है।

जब मुमुक्षु, उसी अदृश्य अर्थात् आंखों से न दिखलाई देने वाले, निराकार, अनिर्वचनीय, निराधार ईश्वर में, अभय प्रतिष्ठा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त कर लेता है तभी वह अभय पदाधिकारी होकर निर्भीक हो जाया करता है। परन्तु जो दुर्भाग्य वाले पुरुष इस में जरा-सा भी शक करते हैं, वे उस अभय पद को नहीं प्राप्त कर सकते और भयभीत रहा करतेहैं परन्तु यह भय केवल उन्हीं ब्रह्मज्ञान रहित मनुष्यों को होता है, अन्यों को नहीं।

इति सप्तमोऽनुवाकः।

अथ अष्टमोऽनुवाकः

भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः। भीषाऽस्मा दग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चम इति सैषाऽऽनन्दस्य मीमांऽ सा भवति। युवास्यात्साधुयुवाध्यापकः। अशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः। तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्। स एको मानुष आनन्दः। ते ये शतं मानुषा आनन्दाः। स एको मनुष्य गन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रि-यस्यचाकाम हतस्य। ते ये शतं मनुष्य गन्धर्वाणामा-नंदाः। स एको देव गन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकाम हतस्य। ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः। स एकः पितृणां चिरलोक लोकानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकाम हतस्य। ते ये शतं पितृणां चिरलोकलोकानामा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नन्दाः। स एक आजानजानां देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकाम हतस्य। ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः। स एकः कर्म देवाना देवानामानन्दाः। ये कर्मणा देवानपि यन्ति। श्रोत्रियस्य चाकाम हतस्य। ते ये शतं कर्म देवाना देवानामानन्दाः। स एको देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकाम हतस्य। ते ये शतं देवानामानन्दाः। स एक इन्द्रस्यानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकाम हतस्य। ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः। स एको बृहस्पतेरानंदः। श्रोत्रियस्य चाकाम हतस्य। ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः। स एकः प्रजापतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकाम हतस्य। ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः। स एको ब्रह्मण आनन्दः। श्रोत्रियस्य चाकाम हतस्य। स यश्चायं पुरुषे यश्च सा वादित्ये। स एकः। स य एवं वित्। अस्माल्लोकात्प्रेत्य। एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति। तदप्येष श्लोको भवति॥

इति अष्टमोऽनुवाकः॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—(अस्मात्, भीषा, वातः, पवते) इस (ईश्वर) के भय से हवा चलती है। (भीषा, सूर्यः, उदेति) (उसके) भय से सूर्य उदय होता है। (अस्मात्, भीषा, अग्निः, च, इन्द्रः, च) उसी के भय से अग्नि और इन्द्र (विद्युत्) भी (अपना अपना काम करते हैं) (पञ्चमः, मृत्युः, धावति) पांचवां मृत्यु भी दौड़ता है (अपना काम करता है)। (सा, एषा, आनन्दस्य, मीमांसा, भवति) अब यह आनन्द की मीमांसा प्रारम्भ होती है। (युवा, साधुयुवा, अध्यापकः, स्यात्) कोई युवा जो साधु (श्रेष्ठ) और वेद का ज्ञाता भी हो। (आशिष्टः, द्रढिष्टः, बलिष्ठः) शासक, दृढ़, और बलवान हो। (तस्य, इयम्, पृथिवी, सर्वा, वितस्य, पूर्णा, स्यात्) उसकी यह समस्त पृथिवी धन से परिपूर्ण हो। (सः, एकः, मानुषः, आनन्दः) वह एक, मनुष्य का आनन्द है। (ते, ये, शतम्, मानुषाः, आनन्दाः) वे जो स मनुष्य के, आनन्द हैं। (सः, एकः, मनुष्य गन्धर्वाणाम आनन्दः) वह मनुष्य गंधरवों का एक आनन्द है। (श्रोत्रियस्य च अकामहतस्य,) कामासक्ति रहित वेद पाठी का भी (वह एक आनद है) (ते, ये, शतम्, मनुष्य गन्धर्वाणाम्, आनन्दाः) वे जो मनुष्य गंधर्वों के सौ आनंद हैं। (सः, एकः, देव गन्धर्वाणाम्, आनन्दः) वह देवगंधर्वों का एक आनंद है। (अकामहतस्य, श्रोत्रियस्य, च) कामासक्ति रहित वेद के विद्वान् का भी (वह एक आनन्द है) ते, ये, शतम्, देव गन्धर्वाणाम्, आनन्दाः) वे जो देव गन्धर्वों के सौ आनन्द हैं। (सः, एकः, चिरलोक लोकानाम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पितृणाम् आनन्दः) वह चिरकाल तक उत्तम लोकों में रहने वाले पितरों का एक आनन्द है। (अकामहतस्य, श्रोत्रियस्य, च) कामनाओं से न दबे हुये वेदज्ञ का भी (वह एक आनन्द है) (ते, ये, शतम्, पितृणाम्, चिरलोक कोकानाम्। आनन्दाः) वे जो चिरकाल तक उत्तम लोकों में रहने वाले पितरों के सौ आनन्द हैं (सः, एकः, अजानजानाम्, देवानाम्, आनन्दः) वह, जन्म ही से दिव्य गुणयुक्त विद्वानों का एक आनन्द है। (अकामहतस्य, श्रोत्रियस्य, च) कामपीड़ा रहित वेद के विद्वानों का भी (वह एक आनंद है)। (ते, ये, शतम्, आजानजानाम्, देवानाम्, आनन्दाः) वे जो जन्म ही से दिव्य गुणयुक्त विद्वानों के सौ आनन्द हैं। (सः, एकः, कर्मदेवानाम्, देवानाम्, आनन्दः) वह, कर्म से देवत्व प्राप्त हुये विद्वानों का एक आनन्द है। (ये, कर्मणा, देवानाम्, अपि यन्ति) जो कर्म ही से देवत्व को प्राप्त करते हैं। (अकामहतस्य, श्रोत्रियस्य, च) कामना रहित वेद के विद्वानों का भी (वह एक आनन्द है) (ते, ये, शतम्, कर्मदेवानाम्, देवानाम्, आनन्दाः) वे जो कर्म से देवत्व प्राप्त विद्वानों के सौ आनंद हैं। (सः, एकः, देवानाम्, आनन्दः) वह (जन्म और कर्म दोनों से देवत्व प्राप्त) विद्वानों का एक आनंद है। (अकामहतस्य, श्रोत्रियस्य, च) काम दोष रहित वेद के विद्वानों का भी (वह एक आनंद है)। (ते, ये, शतम्, देवानाम्, आनन्दाः) वे जो (जन्म और कर्म दोनों से देवत्व प्राप्त) विद्वानों के सौ आनन्द हैं। (सः, एकः, इन्द्रस्य, आनन्दः) वह बल, (ऐश्वर्य्य और विद्या में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निपुण) विद्वानों के नेता (इन्द्र) का एक आनंद है। (अकामहतस्य, श्रोत्रियस्य, च) तृष्णा रहित वेद के विद्वान् का भी (वह एक आनंद है)। (ते, ये, शतम्, इन्द्रस्य, आनन्दाः) वे जो सौ इन्द्र के आनंद हैं। (सः, एकः, बृहस्पतेः, आनन्दाः) वह बृहस्पति (इन्द्रादि देवों के गुरु उपदेष्टा,) का एक आनंद है। (अकामहतस्य, श्रोत्रियस्य, च) कामनाओं से ऊपर हुये वेद के विद्वान् का भी (वह एक आनन्द है) (ते, ये, शतम्, बृहस्पतेः, आनन्दाः) वे जो बृहस्पति के सौ आनन्द हैं। (सः, एकः, प्रजापतेः, आनन्दः) वह प्रजापति (सम्राट्) का एक आनंद है (अकामहतस्य, श्रोत्रियस्य, च) कामजित वेद के विद्वान् का भी (वह एक आनंद है)। (ते, ये, शतम्, प्रजापतेः, आनन्दाः) वे जो प्रजापति के सौ आनन्द हैं। (सः, एकः, ब्रह्मणः, आनन्दः) वह ब्रह्म (ईश्वर) का एक आनन्द है। (अकामहतस्य, श्रोत्रियस्य, च) सर्व श्रेष्ठ त्यागी वेद के विद्वान् का भी (वह एक आनन्द है)। (सः, यः, च, अयम्, पुरुषे) वह जो इस पुरुष में है और (यः, च, असौ, आदित्ये) जो उस सूर्य में है। (सः, एकः) वह एक ही है। (सः, यः, एवंवित्) वह जो ऐसा (ईश्वर के एकत्व का जानने वाला है। (अस्मात्, लोकात्, प्रेत्य) इस (आवागवन सम्बन्धी) लोक से पृथक् होकर (एतम्, अन्नमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रामति) इस अन्नमय आत्मा (कोश) को छोड़कर आगे जाता है। (एतम्, प्राणमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रामति) इस प्राणमय कोश को छोड़ कर आगे जाता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एतत्, मनोमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रामति) इस मनोमय कोश को छोड़कर आगे जाता है। (एतम्, विज्ञानमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रामति) इस विज्ञानमय कोश को छोड़ कर आगे जाता है। (एतम्, आनन्दमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रामति) इस आनन्दमय कोश को छोड़ कर आगे जाता है। तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति) इस पर भी यह श्लोक है।

व्याख्या—इससे पहले अनुवाक के अन्त में कहा गया है कि जो मनुष्य ब्रह्म में अभय प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता वह अभय पद प्राप्त कर लेता है। अर्थात संसार से सम्बन्धित पदार्थों के भय से वह ऊपर हो जाता है क्योंकि, जैसा कि इस अनुवाक के आरम्भ में, उपर्युक्त वाद की पुष्टि में, कहा गया है कि संसार के पदार्थ अग्नि, वायु, सूर्य्यादि तो उसी (ईश्वर) के भय (मर्यादा में रखने वाले नियम) से अपना अपना काम करने के लिये मजबूर हैं फिर यह, उस जीवन मुक्त को, जिसने उसी प्रभु का आश्रय ले लिया है, जिसके डर से ये अपना अपना काम करते हैं, किस प्रकार डरा सकते हैं?

(२) अब उसी (ईश्वर) की प्राप्ति और उसकी प्राप्ति से जो आनन्द मनुष्यों को हुआ करता है, उसके प्रकट करने के लिये, इस अनुवाक के मुख्य विषय आनन्द मीमांसा का प्रारम्भ करते हैं। यह विषय शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यकोपनिषद् में भी आया है। परन्तु तीनों स्थलों में जो विवरण दिया गया है, उनमें कुछ गौण सा अन्तर है। इसलिये हम यहाँ पहले एक चित्र देते हैं जिससे तीनों स्थलों में दिया गया विवरण और उनमें जो थोड़ा बहुत अन्तर है वह प्रकट हो जावे:—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द मीमांसा सूचक चित्र

सं.	तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार (अनुवाक = ब्रह्मानन्द वल्ली)	शतपथ ब्राह्मण के अनुसार (शतपथ १४।७।१।३१)	बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार (कण्व य शाखा ४।३।३२)
१	मनुष्यों के १०० आनन्द = मनुष्य गंधर्वों का १ आनंद	मनुष्यों के १०० आनन्द = पितर (जितलोक) का एक आनन्द	मनुष्यों के १०० आनन्द = पितर (जितलोक) का १ आनन्द
२	मनुष्य गंधर्वों के १०० आनन्द = देव गंधर्वों का एक आनन्द	—	—
३	देव गंधर्वों के १०० आनन्द = पितर (चिरलोक) का एक आनन्द	—	—
४	पितरों के १०० आनन्द = आजानज देव का एक आनन्द	पितर (जितलोक) के १०० आनन्द = कर्म देव का एक आनंद	पितर (जितलोक) के १०० आनन्द = गंधर्व का १ आनंद
५	आजानज देवों के १०० आनन्द = कर्म देवों का एक आनन्द	—	गंधर्वों का १०० आनन्द = कर्म देवों का एक आनन्द
६	कर्म देवों के १०० आनन्द = देवों का एक आनन्द	कर्मदेवों के १०० आनन्द = देवोंका एक आनन्द	कर्मदेवों के १०० आनन्द = आजानज देव का एक आनन्द
७	देवों के १०० आनन्द = इन्द्र का एक आनन्द	देवों के १०० आनन्द = गंधर्व का एक आनन्द	—
८	इन्द्र के १०० आनन्द = बृहस्पति का एक आनन्द	—	—
९	बृहस्पति के १०० आनन्द = प्रजापतिका एक आनन्द	गंधर्वों के १०० आनन्द = प्रजापति का एक आनन्द	आजानज देवों के १०० आनन्द = प्रजापति का १ आनन्द
१०	प्रजापति के १०० आनन्द = ब्रह्म का एक आनन्द	प्रजापति के १०० आनन्द = ब्रह्म का एक आनन्द	प्रजापति के १०० आनन्द = ब्रह्म का एक आनन्द

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोट—इस उपनिषद् के विवरण में आये हुये आनन्द भोक्ताओं को, ठीक ठीक समझा जा सके, इसलिये उनका कुछ विवरण यहाँ दिया जाता है:—

(१) मनुष्य—जो व्यक्ति युवा, सच्चरित्र, वेदज्ञ, दृढ़ांग, ऐश्वर्य्यवान और बलवान हो और जिसके आधीन, धन-धान्य से पूर्ण पृथ्वी भी हो, वह, उपनिषद् के तात्पर्य्यार्थ, मनुष्य समझे और कहे जाने के योग्य है। ऐसे व्यक्ति को जो सुख प्राप्त होते हैं, उन सब सुखों की मात्रा का नाम "एक आनन्द" है।

(२) मनुष्य-गंधर्व—यहां मनुष्य के साथ गंधर्व विशेषण जोड़ने का मतलब यह है कि मनुष्यत्व के, सं० १ में वर्णित आदर्श की पूर्ति के साथ, उसमें यह योग्यता और भी हो कि सामगान के द्वारा, ईश्वरोपासना में मग्न रहता हो।

(३) देव-गंधर्व—मनुष्यों के तीन भेद होते हैं:—(१) उत्कृष्ट वे होते हैं जिन्हों ने क्रियात्म जीवन द्वारा दिव्य गुणों को प्राप्त किया है। ऐसे ही मनुष्य "देव" कहलाते हैं। (२) मध्यम श्रेणी के व्यक्ति साधारणतया मनुष्य कहलाते हैं। (३) निकृष्ट मनुष्य वे होते हैं जिन्हें, वेद में दस्यु कहा गया है। इन्हीं को असुर, पिशाच आदि भी कहते हैं। इस प्रकार देव गंधर्व उत्कृष्ट मनुष्य गंधर्वों को कहते हैं।

चिरलोक पितर—पितर रक्षक को कहते हैं। जो लोग वेद विद्या, अपने परिवार, जाति और देश की रक्षा में, सदैव तत्पर रहते थे उनका नाम, वैदिक काल में पितर होता था—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता पिता के सिवा, अन्यों के लिये, पदवी के तौर पर इस्तैमाल होता था। चिरलोक का विशेषण, चिरकाल तक पितृत्व की प्राप्ति समझे जाने के लिये, लगाया गया है। (*)

(५) आजानजदेव—आजानज नाम देव लोक अर्थात् ऐसे स्थान का है जहां उत्कृष्ट मनुष्य रहते हों। ऐसे स्थान पर उत्पन्न व्यक्ति "आजानज" कहलाते हैं। श्रेष्ठ पुरुषों, श्रेष्ठ परिवारों में उत्पन्न होना भी श्रेष्ठ कर्मों का ही फल हुआ करता है। ऐसे व्यक्ति प्रायः जन्म ही से दिव्य गुण रक्खा करते हैं। उनके दिव्य गुणी होने का कारण, माता पिता के सिवा, उनके साथ आये हुये संस्कार आदि मुख्यतया हुआ करते हैं।

(६) कर्म देव—श्रेष्ठ कर्मों से देवत्व प्राप्त करने वाले, कर्म-देव कहे जाते हैं।

(७) देव—दिव्य गुण युक्त पुरुष।

(८) इन्द्र—देवों का अगुआ या नेता।

(९) बृहस्पति—देवों का उपदेष्टा या शिक्षक।

(१०) प्रजापति—देवों का सम्राट् (चक्रवर्ती राजा)।

उपर्युक्त विवरण, केवल ब्रह्म की प्राप्ति से जो आनन्द हुआ करता है उसकी महत्ता प्रदर्शन करने के लिये है। अर्थात मुक्त जीव जो आनन्द प्राप्त किया करता है। उस आनन्द से, संसार के किसी भी सुख की, उपमा नहीं दी जा सकती। यह आनन्द

---

* महाभारत काल तथा उस के इधर उधर, शहर का कोतवाल भी, पितर कहलाता था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर के एकत्व के अनुभव कर लेने से प्राप्त हुआ करता है। उसके एकत्व के अनुभव में, उसके अभिन्नत्व, विभुत्व, सर्व व्यापकत्व और स्नेहमयत्व आदि का अनुभव, शामिल है। उपासक ज्यों ही इस अनुभव प्राप्ति के पथ का पथिक बनता है और चलना प्रारम्भ कर देता है तभी से उसके भीतर से अंहकार (ममता) की भावना, कम होना शुरू हो जाती है। और ज्यों ज्यों वह कम होती जाती है। उपासक आगे बढ़ता जाता है। पहले वह अन्नमय कोश (स्थूल शरीर) की ममता श्रवण और दर्शन (इन्द्रियों के कार्य्यों को) नियन्त्रित करने से छोड़ता है। फिर "मनन" अर्थात् मन बुद्धि आदि अन्तः करणों के कार्य्यों को नियन्त्रित करने से, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोशों अर्थात् सूक्ष्म शरीर की ममता छोड़कर आनन्दमय कोश अर्थात कारण शरीर की सीमा में दाखिल हो जाता है। यहां पहुँच कर, वह "वसुधैव कुटुम्बकम्" का स्वाद चखने लगता है। यहाँ न अपने पराये का भेद होता है, न किसी वस्तु की इच्छा बाकी रहती है। अपने प्रियतम के प्रेम में लीन हो जाता है। यहाँ उसे जो आनन्द प्राप्त होता है उसकी उपमा यदि कोई दी जा सकती है तो केवल उस सुख से, जो सुषुप्तावस्था में, मनुष्यों को प्राप्त हुआ करता है। अन्तर केवल इतना होता है कि सुषुप्ति का सुख तो तमोगुण की बहुतायत से मनुष्य को प्राप्त हुआ करता है परन्तु कारण शरीर (आनन्दमय कोश) की दुनिया में वह तीनों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक गुणों से ऊँचा हो कर, गीता के शब्दों में "निस्त्रै गुण्य" हो जाता है। यहाँ उपासक मुक्त जीव कहलाता है। अब इस अन्तिम (आनन्दमय) कोश से आगे चल कर वह आवागवन के चक्र से छूट कर मुक्त हो जाता है। यही मनुष्य का अन्तिम ध्येय और यही जीवात्मा की अन्तिम गति है।

इति अष्टमोऽनुवाकः।

अथ नवमोऽनुवाकः

यतो वाचो विवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति। एत ँ ह वाव न तपति। किमह ँ साधु नाकरवम्। किमहं पापमकरवमिति। स य एवं विद्वानेते आत्मान ँ स्पृणुते। उभे ह्येवैष एते आत्मान ँ स्पृणुते। य एवं वेद। इत्युपनिषद्।

इति नवमोऽनुवाकः।

अर्थ—(मनसा, सह, वाचः) मन के साथ वाणी (ब्रह्मणः, आनन्दम्, अप्राप्य) ब्रह्म के आनन्द को न पाकर (यतः, निवर्तन्ते) जहां से लौट आती हैं (उसको पाकर) (विद्वान्, कुतश्चन, न, बिभेति, इति) ज्ञानी पुरुष किसी से नहीं डरता। (एतम्, ह, वाव, न, तपति) इसको निश्चय कोई (संकल्प) दुख नहीं देता। (किम्, अहम्, साधु, न, अकरवम्) क्या मैंने अच्छा (काम) नहीं किया ? (किम्, अहम्, पापम्, अकर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वम्, इति) क्या मैंने पाप किया है ? (सः, यः, एवम्, विद्वान्, एते, आत्मानम्, स्पृणुते) सो जो विद्वान् इस प्रकार इस (पुण्य करने और पाप न करने के विचार) से अपने को बलवान् बनाता है (उभे, हि, एव, एषः, एते, आत्मानम्, स्पृणुते) निश्चय ये दोनों (विचार) ही उसकी आत्मा को बलवान् बनाते हैं। (यः, एवम्, वेद) जो इस प्रकार (ब्रह्म को) जानता है (इति, उपनिषद्) यही उपनिषद् है।

व्याख्या—पिछले अनुवाक में वर्णित शिक्षा के समर्थन में इस अनुवाक के प्रारम्भ में एक श्लोक दिया गया है जिसका मतलब केवल इतना है कि मन और इन्द्रियों का विषय ब्रह्म नहीं है और न वे उस तक पहुँच सकती हैं। इसलिये उसे, उन्हीं साधनों से प्राप्त करना चाहिए जिनका इसमें पहले उल्लेख हो चुका है। उसे प्राप्त करके ज्ञानी उपासक किसी से और कहीं भी नहीं डरता।

(२) जब मनुष्य पाप न करके पुण्य ही करता है, तो इनसे जो अच्छे संकल्प उसके मन में उठा करते हैं, वे निश्चित रीति से उसके आत्मा को बलवान् बनाया करते हैं।

(३) ब्रह्म को उपर्युक्त भांति प्राप्त कर लेना यही इस उपनिषद् का सार है।

इति नवमोऽनुवाकः।

ब्रह्मविद्, इदं, अयं, इदं, एक विंशतिः (१) अन्नात्, अन्न रसमयात्, प्राणः, व्यानः, अपानः, आकाशः, पृथिवी, पुच्छं,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षडविंशतिः (२) प्राणं, यजुः, ऋक्, साम, आदेशः, अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं, द्वाविंशतिः, (३) यतः, श्रद्धा, ऋतं, सत्यं, योगः, महः, अष्टादश (४) विज्ञानं, प्रियं, मोदः, प्रमोदः, आनन्दः, ब्रह्म पुच्छं, द्वाविंशतिः, (५) असन्नेव, अष्टाविंशतिः (६) असत्, षोडश (७) भीषाऽस्मात्, मानषः, मनुष्य गन्धर्वाणां, देव गन्धर्वाणां, पितृणां चिरलोक लोकानां, आजनजानां देवानां, कर्मदेवानां, इन्द्रस्य, बृहस्पतेः, प्रजापतेः, ब्रह्मणः, स यश्च, संक्रामति, एक पञ्चाशत्, (८) यतः कुतश्चन, एकादश (९)।

ब्रह्मवित्, य एवं वेद, इत्युपनिषत्॥

नोट—यह इस ब्रह्मानन्द वल्ली के अनुवाक और उनमें आये वाक्यों की गणना है। इसमें अनुवाक के प्रारम्भ के शब्द और उसमें प्रयुक्त मुख्य मुख्य शब्दों का उल्लेख करते हुए अन्त में अनुवाकांतर्गत समस्त वाक्यों की योग संख्या दी हुई है। जैसे पहला अनुवाक "ब्रह्मविद्" शब्द से प्रारम्भ होता है और उसके मुख्य शब्द इदं, अयं, इदं हैं और उसमें २१ वाक्य हैं। पहले अनुवाक की एक संख्या का पहले उपर्युक्त सूची में इन्हीं बातों का उल्लेख है। ऐसा ही अन्यों को जान लेना चाहिए।

वल्ली के अन्त में वही इस वल्ली के प्रारम्भ का मंगलाचरण फिर दे दिया गया है:—

सहनाववतु। सहनौभुनक्तु। सहवीर्य्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। माविद्विषावहै॥

इति ब्रह्मानन्द वल्ली॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ भृगु वल्ली

—※—

प्रथमोऽनुवाकः

भृगुर्वैवारुणिः । वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ! ब्रह्मेति । तस्मा एतत्प्रोवाच । अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति । न ँ हो वाच । यतो वा इमानि भूतानि जायंते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ।

अर्थ—(भृगुः, वै, वारुणिः) वरुण का पुत्र भृगु (वरुणम्, पितरम्, उपससार) अपने पिता वरुण के पास गया (और कहा) (भगवः, ब्रह्म, इति, अधीहि) हे भगवन् ! ब्रह्म (क्या है) यह बतलावें। (तस्मै, एतत्, अन्नम्, प्राणम्, चक्षुः, श्रोत्रम्, मनः, वाचम्, प्रोवाच) (वरुण ने) उसके लिये ऐसा कहा कि अन्न, प्राण, आँख, कान और वाणी। (तम्, ह, उवाच) उस (भृगु) को फिर कहा कि (यतः, वै, इमानि, भूतानि, जायंते) निश्चय जिस से ये प्राणी उत्पन्न होते हैं, (येन, जातानि, जीवन्ति) जिससे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न हुए प्राणी जीते हैं (यत्, प्रयन्ति, अभि संविशन्ति) (और अन्त में) जिसमें जाकर लीन हो जाते हैं। (तत्, विजिज्ञासस्व) उसको जान (तत्, ब्रह्म, इति) वह ब्रह्म है। (सः, तपः, अतप्यत) उस (भृगु) ने तप तपा (सः, तपः, तप्त्वा) उसने तप तप कर।

व्याख्या—दूसरी वल्ली में ब्रह्म के प्राप्ति की जो शिक्षा दी है, उसी प्रकरण को जारी रखते हुए, इस वल्ली में ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा, एक आख्यायिका के रूप में दी गई है। भृगु के पूछने पर उसके पिता वरुण ने अन्न, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, वाणी, और मन का ज्ञान देते हुए कहा कि जिससे ये प्राणी उत्पन्न होते हैं और जीते हैं और अन्त में जिसमें लीन हो जाते हैं। वही ब्रह्म है उसको खोज कर। वरुण ने क्यों अन्न आदि नाम लिया, इसका कारण यद्यपि उसने कुछ नहीं बतलाया था परन्तु भृगु ने, उसका आशय समझ कर तपस्या का जीवन व्यतीत करते हुये, उस (क्रिया) के जानने के लिये पुरुषार्थ किया। (२) पिछली वल्ली में पञ्चकोशों के द्वारा, ब्रह्म के प्राप्त करने की बात कही गई है। वरुण ने अन्नादि का नाम लेकर उन्हीं का संकेत किया है। अन्न से वरुण का अभिप्रायः अन्नमय कोश से था, प्राण से प्राणमय कोश का, और चक्षु, श्रोत्र, वाणि और मन से अभिप्राय मनोमय कोश से था। चक्षु आदि के गोलक अवश्य अन्नमय कोश से सम्बन्धित हैं परन्तु असली इन्द्रियाँ, सूक्ष्म शरीर का अङ्ग होने और सूक्ष्मभूतों का भाग होने के कारण, मनोमय कोश ही से सम्बन्धित हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरुण का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि भृगु इन कोशों के द्वारा ब्रह्म की ओर चले। भृगु ने किया भी ऐसा ही, जब तक वह आनन्दमय कोश तक नहीं पहुँच गया उसने अपने पिता वरुण का पीछा नहीं छोड़ा।

इति प्रथमोऽनुवाकः।

अथ द्वितीयोऽनुवाकः

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय। पुनरेव वरुणं पितर-मुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तँ होवाच। तपसा ब्रह्मविजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति सतपोऽतप्यत। सतपस्तप्त्वा॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः॥

अर्थ—(अन्नम्, ब्रह्म, इति, व्यजानात्) अन्न ब्रह्म है यह जाना। (अन्नाद्, हि, एव, खलु, इमानि, भूतानि, जायन्ते) निश्चय अन्न ही से ये प्राणि उत्पन्न होते हैं। (अन्नेन, जातानि, जीवन्ति) अन्न से, उत्पन्न हुये (प्राणि) जीते हैं। (अन्नम्, प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति) अन्न में मर कर लीन होते हैं। (तत्, विज्ञाय) यह जान कर (पुनः, एव, वरुणम्, पितरम्, उपससार) फिर पिता वरुण के पास गया। (भगवः, ब्रह्म, इति, अधीहि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवन् ब्रह्म क्या है, बतलावें। (तम्, ह, उवाच) उस (भृगु) को (वरुण ने) कहा (तपसा, ब्रह्म, विजिज्ञासस्व) तप से ब्रह्म के जानने की इच्छा कर। (तपः, ब्रह्म, इति) तप ही ब्रह्म है। (सः, तपः, अतप्यत) उसने तप तपा (सः, तपः, तप्त्वा) उसने तप तप कर।

व्याख्या—अन्न अथवा अन्नमय कोश के ब्रह्म जानने का मतलब यह प्रतीत होता है कि इसे ब्रह्म प्राप्ति का साधन समझ कर ब्रह्म की ओर चलना चाहिये। असंदिग्ध साधन साध्य स्थानी जाना और माना जाता है। घृत, आयु वृद्धि का असंदिग्ध, कारण है इसलिये "आयुर्वैघृतम्" इस प्रसिद्ध वाक्य में आयु को घृत ही कहा गया है। इसी प्रकार पञ्च कोश, ब्रह्म प्राप्ति के असंदिग्ध साधन हैं इसलिये यहां अन्नादि (अन्नमय कोशादि) को ब्रह्म कहा गया है। शङ्कराचार्य्य जी ने भी अन्नादि को ब्रह्म प्राप्ति का द्वार माना है। आनन्द गिरि ने अन्न से ईश्वर के विराट् रूप का अभिप्राय समझा है। अन्न से, प्राणियों के शरीरों का उत्पन्न होना, स्थिर रहना और अन्त में उसी में मिल जाना, स्पष्ट ही है। शरीर ब्रह्म का मन्दिर होने से, उस (ब्रह्म) तक पहुँचने का पहला कारण है। इसी दृष्टि से अन्न तथा तप आदि को ब्रह्म कहा गया है।

अथ तृतीयोऽनुवाकः

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणाद्ध्येव खल्विमानि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूतानि जायन्ते । प्राणेन जातानि जीवन्ति । प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय । पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहिभगवो ! ब्रह्मेति त ँ होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत् । स तपस्तप्त्वा ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ।

अर्थ—(प्राण, ब्रह्म, इति, व्यजानात्) प्राण ब्रह्म है, यह जाना । (प्राणात्, हि, एव, खलु, इमानि, भूतानि, जायन्ते) निश्चय प्राण ही से वे प्राणी उत्पन्न होते हैं । (प्राणेन, जातानि, जीवन्ति) प्राण से उत्पन्न (प्राणी) जीते हैं । (प्राणम्, प्रयन्ति अभिसंविशन्ति, इति) प्राण ही में मरकर लीन होते हैं । (तत्, विज्ञाय) यह जानकर (पुनः, एव, पितरम्, वरुणम्, उपससार) फिर (भृगु) अपने पिता वरुण के पास गया । (भगवः, ब्रह्म, इति, अधीहि) भगवन् ! ब्रह्म क्या है ? उपदेश करें । (तम्, ह, उवाच) उसको कहा (तपसा, ब्रह्म, विजिज्ञासस्व) तप से ब्रह्म को जानो । (तपः, ब्रह्म, इति) तप ब्रह्म है । (सः, तपः, अतप्यत) उसने तप तपा । (सः, तपः, तप्त्वा) उसने तप तपकर ।

व्याख्या—अन्नमय कोश से आगे चलकर, प्राणमय कोश में पहुँचना और उसका मर्म समझना है । इसीलिए इस अनुवाक में प्राण का महत्व प्रदर्शित करते हुए, उसे प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण बतलाया गया है । प्राण की श्रेष्ठता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो इसी से प्रकट है कि प्रत्येक जानदार प्राणी फलता है। प्राण नाम ब्रह्म का भी है। परन्तु यहाँ प्राण ब्रह्म प्राप्ति का असंदिग्ध कारण ही है। और इसी दृष्टि से उसे ब्रह्म कहा गया है।

अन्नमय कोश से प्राणमय कोश की श्रेष्ठता और आगे की सीढ़ी मुख्यतया ग्रहण किया करती हैं परन्तु प्राण अपने लिए कुछ ग्रहण नहीं करता उसका कार्य्य पूर्णतया निष्काम हुआ करता है। यही शिक्षा इस कोश से लेनी चाहिए। तपस्वी जीवन ही अन्नमय कोश में सफलता प्राप्त करने का साधन था और ऐसा ही जीवन इस कोश में भी सफलता प्राप्त करने का साधन है इसीलिए वरुण ने भृगु को तप के द्वारा ब्रह्म की ओर चलने का आदेश किया।

इति तृतीयोऽनुवाकः।

अथ चतुर्थोऽनुवाकः

मनो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। मनसा जातानि जीवन्ति। मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय। पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। त ँ होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा।

इति चतुर्थोऽनुवाकः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—(मनः, ब्रह्म, इति, व्यजानात्) मन ही ब्रह्म है यह जाना। (मनसः, हि, एव, खलु, इमानि, भूतानि, जायन्ते) मन ही से, निश्चय ये प्राणी उत्पन्न होते हैं। (मनसा, जातानि, जीवन्ति) मन से उत्पन्न प्राणी जीते हैं। (मनः, प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति, इति) और मन ही में मर कर लीन हो जाते हैं। (तत्, विज्ञाय) यह जानकर (पुनः, एव, वरुणम्, पितरम्, उपससार) (भृगु) फिर अपने पिता वरुण के पास गया। (भगवः ! ब्रह्म, इति, अधीहि) भगवन् ! ब्रह्म क्या है ? बतलावें। (तम्, ह, उवाच) उसको (वरुण ने) कहा। (तपसा, ब्रह्म, विजिज्ञासस्व) तप से ब्रह्म को जानो। (तपः, ब्रह्म, इति) तप ही ब्रह्म है। (सः, तपः, अतप्यत) उसने तप तपा। (सः, तपः, तप्त्वा) उसने तप करके।

व्याख्या—अब प्राणमय कोश से आगे बढ़कर, मनोमय कोश में पहुँचना और उसका महत्व समझना है। जहाँ प्राण की विशेषता निष्कामना थी, वहां मन की दो विशेषतायें हैं:—

(१) समस्त इन्द्रिय उसके आधीन हैं और वह जिस तरह से चाहता है, उन्हें नचाता है।

(२) जो संकल्प, अपने अनुरूप ही मनुष्य को बना दिया करते हैं। वे इसी मन में उठा करते हैं।

मनोमय कोश द्वारा, जब मनुष्य इन्द्रियों को नियन्त्रित रखने की योग्यता प्राप्त कर लिया करता है और मन को शिवसंकल्प वाला बना दिया करता है, तब मनोमय कोश, ब्रह्म प्राप्ति का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असंदिग्ध कारण बन जाया करता है। इसी दृष्टि से उसे ब्रह्म तथा सब प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण कहा गया है। मनोमय कोश की इस सफलता का कारण भी तप ही है। इसीलिये वरुण ने यहाँ भी उसे फिर तप करने ही का आदेश दिया।

इति चतुर्थोऽनुवाकः।

अथ पञ्चमोऽनुवाकः

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय। पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तंहोवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः

अर्थ—(विज्ञानम्, ब्रह्म, इति, व्यजानात्) विज्ञान ही ब्रह्म है। (विज्ञानात्, हि, एव, खलु, इमानि, भूतानि, जायन्ते) विज्ञान ही से, निश्चय, ये प्राणी उत्पन्न होते हैं। (विज्ञानेन, जातानि, जीवन्ति) विज्ञान ही से उत्पन्न प्राणी जीते हैं। (विज्ञानम्, प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति) विज्ञान ही में मर कर लीन होते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तत्, विज्ञाय) यह जान कर भृगु (पुनः, एव, वरुणम्, पितरम्, उपससार) फिर भी अपने पिता वरुण के पास गया। (भगवः! ब्रह्म, इति, अधीहि) हे भगवन्! ब्रह्म क्या है यह मुझे बतलावें? (तम्, ह, उवाच) उसको (वरुण ने) कहा। (तपसा, ब्रह्म, इति, विजिज्ञासस्व) तप से ब्रह्म को जानो। (तपः, ब्रह्म, इति) तप ही महान है। (सः, तपः, अतप्यत) उसने तप तपा। (सः, तपः, तप्त्वा) उसने तप करके।

व्याख्या—अब मनोमय कोश से आगे चल कर, विज्ञानमय कोश की सीमा में पहुँच कर, उससे लाभ उठाना है। मनोमय कोश में रहने तक मनुष्य के भीतर ममता (मेरे, तेरे पन) का भाव रहा करता है परन्तु विज्ञानमय कोश की विशेषता यह है क इस कोश में पहुँच कर, उपासक, समष्टि बुद्धि तत्त्व (महत्त्व) का आश्रय लिया करता है जहां अहंकार की पहुँच नहीं है। और यही निरहंकारता मनुष्य को, इस योग्य बना देती है कि वह आनन्दमय कोश (कारण शरीर) में प्रवेश कर सके। साधन इसका भी वही तप है। इसलिये वरुण ने भृगु को, इस मंज़िल पर पहुँचने के लिये भी, उसी तप करने ही का आदेश दिया है।

इति पञ्चमोऽनुवाकः।

अथ षष्ठोऽनुवाकः

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्धयेव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । सैषा भार्गवी वारुणी विद्या । परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता । य एवं वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः

अर्थ—(आनन्दः, ब्रह्म, इति, व्यजानात्) आनन्द ही ब्रह्म है, यह जाना । (आनन्दात्, हि, एव, खलु, इमानि, भूतानि, जायन्ते) निश्चय आनन्द ही से ये प्राणी उत्पन्न होते हैं । (आनन्देज, जातानि, जीवन्ति) आनन्द ही से उत्पन्न प्राणी जीवित रहते हैं। (आनन्दम्, प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति, इति) आनन्द ही में,मरकर, समा जाते हैं । (सा,एषा,भार्गवी,वारुणी,विद्या) सो, यह भृगु और वरुण की विद्या है और (परमे,व्योमन्,प्रतिष्ठिता) श्रेष्ठ हृदयाकाश में प्रतिष्ठित है । (यः, एवम्, वेद, प्रतितिष्ठति) जो इस प्रकार (इस विद्या को जानता है प्रतिष्ठित होता है। (अन्नवान्, अन्नादः, भवति) अन्नवान् और उस अन्न का भोग करने वाला होता है। (प्रजया, पशुभिः, ब्रह्मवर्चसेन, महान्, कीर्त्या, महान् भवति) संतान, पशु, ब्रह्मतेज और उत्कृष्ट कीर्ति से, महान् होता है ।

व्याख्या—विज्ञानमय कोश से आगे बढ़कर, अन्न उपासक आनन्दमय कोश में, प्रवेश करता है और आनन्दमय कोश को उत्पत्ति, स्थिति का कारण समझता हुआ मर कर आनन्द ही में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रविष्ट हो जाता अर्थात मुक्ति प्राप्त कर लेता है। यहां पहुँच कर भृगु संतुष्ट हो जाता है और अब अपने पिता से और कुछ पूछने की जरूरत नहीं समझता। वरुण से इस विद्या को, भृगु ने प्राप्त किया था इसलिये, उचित रीति से, इस विद्या का नाम "भार्गवी वारुणी विद्या" लिया जाता है। यह विद्या हृदयाकाश में रहने वाले आत्मा में प्रतिष्ठित है। इसीलिये इसे आत्म विद्या भी कहते हैं। इस विद्या से संबंधित प्रकरण को समाप्त करते हुये, उपनिषद्कार ने, फल श्रुति अङ्कित की है। अर्थात् जो मनुष्य इस विद्या को प्राप्त करके उसके अनुकूल आचरण करता है वह संतान, पशु वाला और ब्रह्मतेज से संपन्न होकर, महान् यशस्वी होते हुये, लोक और परलोक दोंनों में महान् होता है।

इति षष्ठोऽनुवाकः

अथ सप्तमोऽनुवाकः

अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम्। प्राणो वा अन्नम्। शरीर मन्नादम्। प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितः तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति प्रजया पशुभि र्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या॥

अर्थ—(अन्नम्, न, निन्द्यात्) अन्न की निन्दा न करे (तत्, व्रतम्) यह व्रत है। (प्राणः, वै, अन्नम्) प्राण ही अन्न है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शरीरम्, अन्नादम्) शरीर अन्न का खाने वाला है। (प्राणे, शरीरम्, प्रतिष्ठितम्) प्राण में शरीर प्रतिष्ठित है। (शरीरे, प्राणः, प्रतिष्ठितम्) शरीर में प्राण प्रतिष्ठित है। (तत्, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितम्) सो इस प्रकार अन्न में अन्न प्रतिष्ठित है। (सः, यः, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितं, वेद) वह जो इस अन्न को अन्न में प्रतिष्ठित जानता है। (प्रतितिष्ठति) प्रतिष्ठित होता है। (अन्नवान्, अन्नादः, भवति) अन्नवान् और अन्न का भोक्ता होता है। (प्रजया, पशुभिः, ब्रह्मवर्चसेन, महान्, कीर्त्या, महान्, भवति) सन्तान, पशु, ब्रह्मतेज और महान् कीर्ति से, महान् होता है।

व्याख्या—पंचकोशों का सारा प्रकरण, अन्नमय कोश से, प्रारम्भ होता है, इसलिये, उस प्रकरण को ससाप्त करते हुये, अन्न के सम्बन्ध में, कुछेक आवश्यक बातें, उपनिषद्कार ने, यहां कही हैं :—

पहली बात—यह है कि अन्न अर्थात् किसी भी भोज्य पदार्थ को निन्दा नहीं करनी चाहिये। वह बात व्रत (दृढ़ प्रतिज्ञा) के तौर पर याद रखनी चाहिये। किसी भी भोज्य पदार्थ को, उसे बुरा ससझते वा कहते हुये, जो व्यक्ति उसे खाता है तब वह पदार्थ पचता नहीं अपितु रोगों का कारण होजाया करता है। इसी प्रकरण में प्राण को अन्न और शरीर को अन्नाद कहा गया है यह बड़े महत्व की बात है। साधारणतया प्राण को अन्नाद कहा जाता है फिर यहां उसे अन्न क्यों कहा गया? अन्न के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ जहां भोज्य पदार्थ के हैं वहाँ सूर्य और प्राण आदि के भी हैं। तात्पर्य यह है कि अन्न भोज्य और भोक्ता दोनों को कहते हैं। प्राण इस स्थूल अन्न का अवश्य भोक्ता होता है परन्तु इस अन्न को भोग लेने से जब वह शक्ति के रूप में होजाता है। तो तीनों प्रकार के शरीर उस शक्ति को ग्रहण करके अपने को बलिष्ठ बनाते हैं। यहां इस प्रकार प्राण अन्न (भोग्य) के रूप में हो गया और शरीर भोक्ता के रूप में। भाव इसका यह है कि अन्न की निन्दा न करते हुए उससे प्राण और शरीर दोनों को बलवान बनाना चाहिए, तभी, प्राण और शरीर दोनों एक दूसरे के आधाराधेय होकर मनुष्य को सुखी और बलवान बना सकते हैं।

इति सप्तमोऽनुवाकः।

अथ अष्टमोऽनुवाकः

अन्नं न परिचक्षीत। तद्व्रतम्। आपो वा अन्नम्। ज्योतिरन्नादम्। अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम्। ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या॥

इति अष्टमोऽनुवाकः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—(अन्नम्, न, परिचक्षीत) अन्न को (अनादर की दृष्टि से) न त्यागे। (तत्, व्रतम्) यह व्रत (मर्यादा) है। (आपः, वै, अन्नम्) निश्चय जल अन्न है (ज्योतिः, अन्नादम्) अग्नि (अथवा सूर्य) अन्न का भोक्ता है। (अप्सु, ज्योतिः, प्रतिष्ठितम्) जल में ज्योति प्रतिष्ठित है। (ज्योतिषि, आपः, प्रतिष्ठिताः) ज्योति में जल प्रतिष्ठित है। (तत्, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितम्) वह यह अन्न अन्न में प्रतिष्ठित है। (सः, यः, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितम्, वेद, प्रतितिष्ठति) सो जो कोई इस अन्न को अन्न में प्रतिष्ठित होने को जानता है, प्रतिष्ठित होता है। (अन्नवान्, अन्नादः, भवति) अन्नवान् और अन्न का भोक्ता होता है। (प्रजया, पशुभिः, ब्रह्मवर्चसेन, महान् कीर्त्या, महान्, भवति) प्रजा, पशु, ब्रह्मतेज, उत्कृष्ट कीर्ति से महान् होता है।

व्याख्या—अन्न के सम्बन्ध में पहली बात कही जा चुकी है, दूसरी अब कही जाती है।

दूसरी बात—यह है कि अन्न का निरादर नहीं करना चाहिए और न निरादर की भावना से उसका त्याग करना चाहिए। इसे समझ लेना चाहिए कि यह नियम और मर्यादा है। इस प्रकरण में जल को अन्न और अग्नि अथवा सूर्य को अन्नाद कहा गया है। जल का पेय पदार्थ होने से, अन्न होना तो स्पष्ट ही है। इसके सिवा जल अन्न की उत्पत्ति का असंदिग्ध कारण भी है। अग्नि अथवा सूर्य जल को सुखाकर भाफ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बना देने से उसका भोक्ता है। इसलिए जल और अग्नि का अन्न और अन्नाद होना साफ़ ज़ाहिर है। जल सूक्ष्म रूप, भाफ आदि की सूरत में अग्नि में प्रतिष्ठित है और अग्नि अपने सूक्ष्म रूप विद्युत् आदि की सूरत में जल में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार जल और अग्नि का एक दूसरे का आधाराधेय होना भी स्पष्ट ही है। जब मनुष्य अन्न का अनादर न करते हुए उनके उत्पत्ति के साधक जल और अग्नि के मेल के महत्व को समझकर उससे लाभ उठाता है तभी वह अन्नवान्, अन्नाद तेजस्वी और यशस्वी होकर महान् पुरुषों की कोटि में आया करता है।

इति अष्टमोऽनुवाकः।

अथ नवमोऽनुवाकः

अन्नं बहु कुर्वीत। तद्व्रतम्। पृथिवी वा अन्नम्। आकाशोऽन्नादः। पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः। आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादोभवति महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या॥

इति नवमोऽनुवाकः।

अर्थ—(अन्नं, बहु, कुर्वीत) अन्न को बहुत बढ़ावे (संग्रहीत करे) (तत्, व्रतम्) यह नियम है। पृथिवी, वै, अन्नम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय पृथिवी अन्न है। (आकाशः, अन्नादः) आकाश अन्न का भोक्ता है। (पृथिव्याम्, आकाशः प्रतिष्ठितम्) पृथिवी में आकाश प्रतिष्ठित है। (आकाशे, पृथिवी, प्रतिष्ठिता) आकाश में पृथिवी प्रतिष्ठित है। (तत्, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितम्) इस प्रकार यह अन्न अन्न में प्रतिष्ठित है। (सः, यः, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठिम्, वेद, प्रतितिष्ठति) सो जो कोई इस अन्न में अन्न के प्रतिष्ठित होने को जानता है, प्रतिष्ठित होता है। (अन्नवान्, अन्नादः, भवति) अन्नवान् और अन्न का भोक्ता होता है। (प्रजया, पशुभिः, ब्रह्मवर्चसेन, महान् कीर्त्या, महान्, भवति) सन्तान, पशु, तेजस्विता, और उत्तम यश से महान् होता है।

व्याख्या—अन्न के सम्बन्ध में तीसरी बात यहाँ कही गई है:—

तीसरी बात—यह है कि अन्न का पुष्कल संचय करना चाहिये और इसकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये। किस प्रकार यह संचय हो सकता है? इसके लिये निम्न बातें उसे जाननी चाहिये:—पृथिवी अन्न और आकाश अन्नाद है। जितने भी अन्न अर्थात् भोज्य पदार्थ होते हैं उन सभी का रूप पार्थिव होता है और अधिकांश उनमें पृथिवी ही का अंश होता है, इसलिये पृथिवी का अन्न होना स्पष्ट है। जितने भी अन्न हैं अथवा स्वयं पृथिवी अन्न रूप है, इन सब का आश्रय स्थान आकाश होता है और आकाश ही में वे, खाये हुये पदार्थों की सदृश, संगृहीत होते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इसी दृष्टि से आकाश को अन्न का भोक्ता कहा जाता है। पृथिवी का आकाशमें और आकाश का पृथिवी में होना प्रत्यक्ष है। इसलिये इनका परस्पर एक दूसरे का आधाराधेय होना भी साफ़ जाहिर है। जब मनुष्य पृथिवी को, अन्नोत्पत्ति का कारण समझ लेता है और आकाश (ईथर=Ethar) की उपयोगिता भी समस्त पदार्थों का आधार होने आदि के द्वारा समझ लेता और इन दोनों से इसी रूप में काम लेने लगता है तभी वह अन्नवान् और अन्नाद होता है तभी संतति, पशु, तेजस्विता और कीर्ति प्राप्त कर महान् हो जाता है।

इति नवमोऽनुवाकः।

अथ दशमोऽनुवाकः

न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत। तद्व्रतम्। तस्माद्यया कया च विधया बह्वन्नंप्राप्नुयात्। अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते। एतद्वैमुखतोऽन्नंराद्धम्। मुखतोऽस्माअन्नं राध्यते। एतद्वै मध्यतोन्नं राद्धम्। मध्यतोऽस्मा अन्नं राध्यते। एतद्वा अन्नतोऽन्नंराद्धम्। अन्ततोऽस्मा अन्नंराध्यते॥ १॥ य एवं वेद। क्षेम इतिवाचि। योग क्षेम इति प्राणापानयोः। कर्मेति हस्तयोः। गतिरिति पादयोः। विमुक्तिरिति पायौ। इति मानुषीः समाज्ञाः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ दैवीः । तृप्तिरिति वृष्टौ । बलमिति विद्युति ॥ २ ॥ यश इति पशुषु । ज्योतिरिति नक्षत्रेषु । प्रजातिरमृतमानन्द इत्युपस्थे । सर्वमित्याकाशे । तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत । प्रतिष्ठावान् भवति । तन्महः इत्युपासीत । महान् भवति । तन्मन इत्युपासीत । मानवान् भवति तन्नम इत्युपासीत । नम्यन्तेऽस्मै कामाः । तद् ब्रह्मेत्युपासीत ॥ ३ ॥ ब्रह्मवान् भवति । तद् ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत । पर्येण म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः । परियेऽम्रिया भ्रातृव्याः । स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये । स एकः ॥ ४ ॥ स य एवंवित् । अस्माल्लोकात्प्रेत्य । एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य । इमाँल्लोकान् कामान्नीकामरूप्यनुसञ्चरन् । एतत्सामगायन्नास्ते । हा ३ वु हा ३ वु हा ३ वु ॥ ५ ॥ अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् । अहमन्नादो ऽहमन्नादो ऽहमन्नादः । अहꣳ श्लोक कृदहꣳ श्लोक कृदहꣳ श्लोककृत् अहमस्मि प्रथमजा ऋता ३ स्य । पूर्वं देवेभ्यो ऽमृतस्य ना ३ भायि । यो मा ददाति स इदेव मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ वाः । अहमन्नमन्नमदन्तमा ३ दमि । अहं विश्वं भुवन-मभ्यभवां ३ सुवर्ण ज्योतीः । य एवं वेद । इत्युपनिषद् ॥ ६ ॥ (राध्यते विद्युति मानवान् भवत्येको हा ३ वु य एवं वेदैकञ्च) ॥

इति दशमोऽनुवाकः ।

अर्थ—(कञ्चन, वस्तौ, न, प्रत्याचक्षीत) किसी, वसने की इच्छा से आये हुए (अतिथि) को न लौटाओ । (तत् व्रतम्) यह मर्यादा है । (तस्मात्, यया, कया, च, विधया, बहु अन्नम्, प्राप्नुयात्) इसलिये जिस किसी विधि से (हो सके) बहुत अन्न संग्रह करे । (अस्मै, अन्नम्, अराधि, इति, आचक्षते) इस (अतिथि) के लिये अन्न पकाया गया है, ऐसा कहे । (एतत्, वै, मुखतः अन्नम्, राद्धम्) निश्चय यह अन्न उत्तम रीति (श्रद्धा) से पकाया गया है । (मुखतः, अस्मै, अन्नम्, राध्यते) श्रद्धा से उसे (अतिथि को) अन्न (पकाया हुआ) देता है । (एतत्, वै, मध्यतः, अन्नम्, राद्धम्) निश्चय यह अन्न मध्यम रीति से बनाया गया है । (मध्यतः, अस्मै, अन्नम्, राध्यते) मध्य श्रद्धा से उस (अतिथि) को अन्न देता है । (एतत्, वै, अन्नतः, अन्नम्, राद्धम्) निकृष्ट रीति से यह अन्न पकाया गया है । (अन्ततः, अस्मै अन्नम्, राध्यते) निकृष्ट श्रद्धा से उसे (अतिथि को) अन्न देता है ॥ १ ॥ (यः एवम्, वेद) जो ऐसा जानता है । (क्षेमः, इति, वाचि) उसकी वाणी में क्षेम, (योग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेमः, इति, प्राणापानयोः) प्राण और अपान में योग क्षेम, (कर्म, इति, हस्तयोः) हाथों में कर्म, (गतिः, इति, पादयोः) पैरों में गति (विमुक्तिः, इति, पायौ) मलेन्द्रिय से मल विसर्जन (होता है) (इति, मानुषी, समाज्ञाः) ये मनुष्य वाणी से पालन करने योग्य, नियम हैं। (अथ, दैवीः अब दैवी (आज्ञाओं नियमों को कहते हैं। (तृप्तिः, इति, वृष्टौ) वर्षा में तृप्ति, (बलम्, इति, विद्युति) बिजली में बल है ॥ २ ॥

(यशः, इति, पशुषु) पशुओं में बल, (ज्योति, इति, नक्षत्रेषु) नक्षत्रों (तारागण) में प्रकाश, (प्रजातिः, अमृतम्, आनन्दः, इति, उपस्थे) सन्तानोत्पत्ति, अमृतत्व और आनन्द जनेन्द्रिय में, (सर्वम्, इति, आकाशे) सब कुछ आकाश में है, (तत्, प्रतिष्ठा इति, उपासीत, प्रतिष्ठावान्, भवति) उसको आधार मान कर उपासना करे तो प्रतिष्ठावान होता है। (तत्, महः, इति, उपासीत) उसको महान् जानकर उपासना करे तो (महान्, भवति) महान् होता है। (तत्, मनः, इति उपासीत, मानवान, भवति) उसको मन = मनीषी = मननशील मानकर उपासना करे तो मानवान (मनस्वी) होता है ॥ ३ ॥

(तत्, नमः, इति, उपासीत, नम्यन्ते, अस्मै, कामाः) उसे निरहंकार पूज्य मान कर उपासना करे तो उसकी समस्त कामनायें उसके लिए झुकती हैं (पूरी हो जाती हैं), (तत्, ब्रह्म, इति, उपासीत, ब्रह्मवान्, भवति) उसको बड़ा जानकर उपासना करे तो ब्रह्मवान् (आस्तिक या बड़ा) होता है। (तत्, ब्राह्मणः, परिमरः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति उपासीत) उस ब्रह्म को सबका नियन्त्रण करने वाला जानकर उपासना करे तो (वर्म्येणम् म्रियन्ते, द्विषन्नः, सपत्नाः, परि, ये, अप्रिया भ्रातृव्याः) उस से द्वेष करने वाले शत्रु और वे शत्रु भी जो उसे अप्रिय हैं सब ओर नष्ट होजाते (अर्थात् शत्रुता का भाव छोड़ देते) हैं। (सः, यः, च, अयम्, पुरुषे, यः, च, असौ, आदित्ये) वह जो इस पुरुष मनुष्य शरीर) में है और जो उस सूर्य में है (सः, एकः) वह एकही है ॥ ४ ॥

(सः, यः एवम्, वित्) वह जो ऐसा जानता है (अस्मात्, लोकात्, प्रत्य) इस लोक से मर कर (एतम्, अन्नमयम्, आत्मानं, उपसंक्रम्य) इस अन्नमय आत्मा (कोश) से आगे बढ़ कर, (एतम्, प्राणमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रम्य) इस प्राणमय कोश से आगे बढ़ कर, (एतम्, मनोमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रम्य) उस मनोमय कोश से आगे बढ़कर (एतम्, विज्ञानमयं, आत्मानम्, उपसंक्रम्य) इस विज्ञानमय कोशसे आगे बढ़कर, (एतम्, आनन्दमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रम्य) इस आनन्दमय कोश से आगे बढ़कर (इमान्, लोकान्, कामान्, नीकाम रुपी, अनुसंचरन्) इन सब कामना के योग्य लोकों को, निष्काम होकर विचरता हुआ (एतत्, सामगायन, आस्ते) यह सामगान करता हुआ रहता है। (हावु, हावु, हावु) हावु के अर्थ हैं अहो, अहो (तेरी रचना), अहो तेरी महिमा) अहो तेरी अलौकिकता) अहम्, अन्नम्, अहम्, अन्नम्, अहम्, अन्नम्) मैं अन्न हूँ मैं अन्न हूँ मे अन्न हूं। ५ (अहम्, अन्नादः, अहम्, अन्नादः, अहम्, अन्नादः) मैं अन्नका भोक्ता हूँ, मैं अन्नका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
1633

भक्षक हूं, मैं अन्न का खादक हूं। (अहम्, श्लोक, कृत, अहम्, श्लोक, कृत्, अहम्, श्लोककृत्) मैं कीर्तिका बढ़ाने वाला हूं. मैं कीर्ति का बढ़ाने वाला हूँ, मैं कीर्ति का बढ़ाने वाला हूँ। अहम्, ऋतस्य, प्रथमजा, अस्मि) मैं ऋत (तीनों काल में एक जैसे रहने वाले ईश्वरीय नियम) की श्रेष्ठ सृष्टि हूं, (पूर्वम्, देवेभ्यः, अमृतस्य, नाभौ) देवों से पहिले मैं अमृत की नाभि अर्थात् इन्द्रियों के घटने से पहले मैं मोक्ष स्थित (जीवन मुक्त) हूं। (यः, मा, ददाति, सः, इत, एव, मा, अवाः) जो मुझे (उपर्युक्त मोक्षानन्द देता है वही मेरी रक्षा करता है (अहम्, अन्नम्, अन्नम्, अदन्तम्, आ, अद्मि) में प्रत्येक प्रकार के (खाद्य तथा रस रूप) अन्न के (अदन्तम्) खाने वाले (वनस्पति और औषधि आदि) को खा लेता हूँ। (अहम् विश्वम्, भुवनम्, अभ्यभवाम्) मैं समस्त विश्व को दबाता (मर्यादा में रखता) हूँ (सुवः, न, ज्योति) जैसे सूर्य (तारा आदि नक्षत्रों के) ज्योति को। (यः, एवम्, वेद) जो इस प्रकार जानता है (इति, उपनिषद्) यह उपनिषद हैं॥ ६॥

नोट—इस अनुवादक के पाँच खंडों के अन्तिम पद राध्यते, विद्युति, मानवान, भवति, एकः, और हावु हैं। छठे के अन्त में "य एवं वेद" वाक्य के बाद एक वाक्य और है।

इति दशमोऽनुवाकः

व्याख्या—अन्न के सम्बन्ध में चौथी बात यहां कही गई है। चौथी बात—अतिथि को अन्न देना है। आतिथ्य की महिमा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट करते हुए, इस प्रकरण में शिक्षा यह दी गई है कि किसी भी आये हुये अतिथि को, गृहस्थ का धर्म है कि न लौटावे और उसके लिये, उसे धर्मानुसार प्रत्येक सम्भव रीति से अन्न का संग्रह करे और उचित रीति और समुचित श्रद्धा के साथ अतिथि को भोजन करावे। ऐसा करने से, उपनिषत्कार का कथन है कि गृहस्थ को योग क्षेम प्राप्त होता है। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति का नाम योग और प्राप्त की रक्षा को क्षेम कहते हैं। तात्पर्य इसका यह है कि अतिथि के गृह में आने से अप्राप्त विद्या की प्राप्ति और उससे आत्मा और इन्द्रियों के बलवान् हो जाने से प्राप्त के रक्षा करने की योग्यता गृहस्थ के भीतर आ जाती है। उसके प्रत्येक इन्द्रि नियम पूर्वक अपना अपना काम करने लगते हैं जिससे उपासक सदैव नीरोग रहा करता है।

(२) ऐसा उपासक तीनों प्रकार के दुखों से सुरक्षित रहता है उसके लिये तृप्ति करने वाली वर्षा होती है। बिजली में बल, आकाशस्थ नक्षत्रों में प्रकाश रहता है। यश देने वाले पशु और सन्तान सहित प्रत्येक प्रकार का इन्द्रिय सुख भी प्राप्त रहता है।

(३) अनेक प्रकार के सुखों की गिनती कराते हुये, शिक्षा यह दी गई है कि ये सभी सुख एक जगह एकत्रित, आकाशवत् व्यापक ब्रह्म में, रहते हैं। इसलिये जो मनुष्य उसी (व्यापक ब्रह्म) को अपना एकमात्र आधार मान लेता है तो वह लोक और परलोक दोनों में प्रतिष्ठित होता है।

(४) अब जप और उपासना की महिमा प्रकट करते हैं:—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) उसी ब्रह्म को "महः" जानकर जप और उपासना करने से, उपासक महान् होता है।

(ख) मन (मनीषी) जानकर उपासना करने से उपासक में मनन शीलता आती है।

(ग) नम गुण वाला मानकर उपासना करने से, उपासक में, नम्रता आती है।

(घ) ब्रह्म मानकर उपासना करने से उपासक उच्चकोटि का आस्तिक बना करता है।

(च) उसे "परिमर" नियन्ता अथवा रुद्र मानकर उपासना करने से, उपासक शत्रु रहित हो जाता है।

ऐसे अनेक गुणों वाले, व्यापक ईश्वर से सूर्य, चन्द्र, मनुष्य और पशु सभी परिपूर्ण हैं परन्तु सब जगह होता हुआ है वह एक ही। उसमें अनेकता का पूर्णतया अभाव है।

(५) ऐसा उपासक पञ्चकोशों से आगे बढ़कर जीवन मुक्त होकर समस्त लोकों में निष्कामता के साथ भ्रमण करता हुआ, ईश्वर की महान् रचना को देख और मुग्ध होकर कह बैठता है:—

"अहो तेरी रचना," "अहो तेरी महिमा।"
"अहो तेरी अलौकिक दिव्य ज्योति॥"

वह अपने को, "अत्ता चराचर गृहणात्" की मर्यादा से, ईश्वर का अन्न और आनन्द भोक्ता होने से दिव्य आनन्द रूपी अन्न का अन्नाद (भोक्ता) जानता और मानता है और इसी में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी कीर्ति की वृद्धि, समझता है और इसी में ईश्वर को श्रेष्ठ सृष्टि (मनुष्य) होने की सफलता मानता है। ईश्वर के आनन्द दाता, और रक्षक होने का, उसके हृदय में, अटल विश्वास होता है। जैसे तारों में सूर्य श्रेष्ठ होता है इसी प्रकार अन्न प्राणियों में ऐसा जीवन मुक्त महान होता है।

इति दशमोऽनुवाकः

भृगु वल्ली की सूची

पहला अनुवाक—भृगु स्तस्म, यतो विशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व तत्, इस अनुवाक के मुख्य शब्द हैं और इसमें १३ वाक्य हैं।

दूसरा अनुवाक—"अन्नम्" से प्रारम्भ होता है।

तीसरा अनुवाक—प्राणम से प्रारम्भ होता है।

चौथा अनुवाक—मनो—से शुरू होता है।

पाँचवाँ अनुवाक—विज्ञानमिति विज्ञायतं तपसा—इस अनुवाक के मुख्य शब्द हैं और इसमें १२ वाक्य हैं।

छठा अनुवाक—"आनन्द इति" से अनुवाक शुरू होता है "सैषा" बीच का शब्द है और इसमें १२ वाक्य हैं।

सातवाँ अनुवाक—"अन्नं न निन्द्यात्" से शुरू होता है। "प्राणः शरीरम्" इसके बीच के शब्द हैं और इसमें १० वाक्य हैं।

आठवाँ अनुवाक—"अन्नम् परिचक्षीत" से प्रारम्भ होता है। "आपोज्योतिः" इसके मुख्य शब्द हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवाँ अनुवाक—"अन्नं बहु कुर्वीत" से प्रारम्भ होता है। "पृथिव्यामाकाशः" इसके मुख्य शब्द हैं और इसमें ११ वाक्य हैं।

दशवाँ अनुवाक—"न किञ्चन" से प्रारम्भ होता है। इसके ६ खण्ड हैं। और तीसरे खण्ड के "एकः" शब्द के बाद इस अनुवाक में २० वाक्य हैं।

इति भृगु वल्ली समाप्ता

समाप्ता चेयं तैत्तिरीयोपनिषद्॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

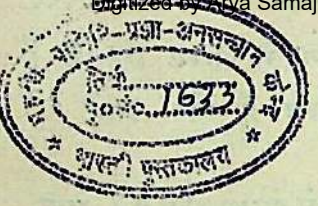

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिगरा

केबिन

सिन्नी उत्तमता चाहने

दि बनारस स्टेट

नव परिसर शुभारम्भ के

हार्दिक शुभकाम

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के निर्माता एवं [illegible]

के लिए

लि०

सर पर

कुमार

ध निदेशक

मिटेड

वेला

णसी-2

दि बनारस स

मुख्यालय नव परि

हार्दिक

झिल्लू प्रसा

सीके. 46/76,

वाराणसी-221001

दूरभाष : 351660

दि बनार

नव परिसर (प्रस्तावित)

वी. सी. व

मेन रोड

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.